हैदराबाद राज्य हिन्दी प्रचार सभा

शाखा—सिकन्दराबाद.

प्रकाशक

सुबुद्धिनाथ

नार्दर्न इंडिया पब्लिशिंग हाउस

दिल्ली।

पहला संस्करण

१९४६

मूल्य १॥)

डाक से १॥-)

मुद्रक

अमरचन्द्र

राजहंस प्रेस

दिल्ली।

जै हिन्द

क्रान्ति के महान साधक और विश्व प्रेम के महान उपासक राजा महेन्द्र-प्रताप की यह जीवनी अपने देशवासियों के सामने उपस्थित करने में हम विशेष गर्व अनुभव कर रहे हैं। "टोकियो से इम्फाल" पुस्तक में हमने राजासाहब का विशेष रूप से उल्लेख किया है। जुलाई के अन्तिम सप्ताह में पुस्तक का वह अंश छप चुका था, जिसमें राजासाहब का उल्लेख था। तब यह अनुमान लगाना भी कठिन था कि आप इतनी जल्दी स्वदेश लौट आयेंगे और हमें आपकी जीवनी इस रूप में उपस्थित करने का सौभाग्य प्राप्त होगा। राजासाहब के स्वदेश लौटने पर आपके साहसी जीवन की चमत्कार-पूर्ण कहानी लिखने का विचार हमने अपने अन्यतम मित्र सरदार रामसिंह जी रावल के सामने उपस्थित किया। आप हमारे विचार से सहसा सहमत हो गये। इतने कम समय में इतने सुन्दर ढंग से इतनी बढ़िया जीवनी आपके सहयोग के बिना लिखनी संभव न थी। "टोकियो से इम्फाल" पुस्तक से सरदारजी का जिन्होंने परिचय प्राप्त कर लिया है, उनको नये सिरे से आपके सम्बंध में कुछ अधिक बताने की आवश्यकता नहीं है। आपको जापान में राजासाहब को बहुत समीप से देखने और आपके विचारों तथा कार्यक्रम को समझने का अवसर मिला है। जापान में रावलजी सार्वजनिक संस्थाओं और कार्यों में काफी उत्साह से भाग लेते थे। राजाजी द्वारा खड़ी की गई आर्य सेना में भी आप शामिल हुये थे। आजाद हिन्द के नाम से हुई प्रचण्ड क्रांति में तो आपने यहां तक सक्रिय भाग लिया कि आप बैंकोक में १५ जून को हुये उस सम्मेलन में जापान से प्रतिनिधि होकर पधारे थे, जिसमें आजाद हिन्द आंदोलन एवं संगठन की नींव डाली गई थी। सम्मेलन के बाद आप ने स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस के साथ उनके प्राईवेट सिक्रेटरी के रूप में काम

किया। बाद में बैंकोक से निकलने वाले दैनिक 'आजाद हिंद' पत्र के आप सम्पादक और थाईलैण्ड प्रादेशिक कमेटी के प्रकाशन-अफसर नियुक्त किये गये। ऐसे अनुभवी और अधिकारी सज्जन की कलम से लिखी गई इस जीवनी के प्रामाणिक होने में सन्देह नहीं किया जा सकता।

राजासाहब के मथुरा पधारने पर रावलजी आपसे मिलने के लिये वहां गये। जीवनी लिखने के लिये आपकी अनुमति प्राप्त की। उसके लिये आपने कुछ सामग्री भी प्रदान करने की कृपा की। संक्षिप्त होते हुये भी इसको अधिक से अधिक प्रामाणिक बनाने का पूरा यत्न किया गया है। राजासाहब की जीवनी सिर्फ एक क्रान्तिकारी महापुरुष की ही जीवनी नहीं है। वह उससे कुछ अधिक इसी लिये है कि राजासाहब भी क्रान्तिकारी की अपेक्षा बहुत अधिक हैं। जिन क्रान्तिकारी विचारों, योजनाओं तथा कार्यक्रम के आप पुरस्कर्ता हैं, उनका प्रारम्भ निस्सन्देह हिन्दुस्तान से हुआ है, किन्तु इस क्रान्ति से प्रेरित होकर आपने विश्व-प्रेम के जिस महान मिशन को अपने जीवन का लक्ष्य बना लिया है, वह भिन्न भिन्न देशों, जातियों तथा राष्ट्रों की सीमा को पार कर सारे विश्व और समस्त मानव-समाज के साथ जुड़ गया है। समस्त मानव समाज में प्रेम का संचार करने के लिये आज के निजाम को बदलने के लिये प्रचण्ड क्रान्ति की आवश्यकता है। हिन्द में की जाने वाली क्रांति तो उसका एक छोटा-सा हिस्सा ही है। विश्व प्रेम का सन्देशा लेकर आने वाले लोगों को उनके समकालीन "स्वप्न द्रष्टा" कह कर 'हवाई महल खड़े करने वाला' कहा करते हैं। ऐसे लोकापवाद की तनिक भी परवा न कर वे लोग तो अपनी धुन या लगन में अहोरात्र निरन्तर लगे रहते हैं। राजासाहब भी ऐसे ही लोगों में से हैं। भविष्य का निरूपण करने वाले ये लोग वर्तमान से इतना आगे बढ़ जाते हैं कि केवल वर्तमान पर जिनकी आंखें लगी रहती है, वे उन्हें समझ नहीं पाते। इसीलिये राजासाहब की अनेक बातों का साधारण दृष्टि से देखने वालों की समझ में आना जरा कठिन है। राजासाहब सिर्फ स्वप्न

लोक में विचरने और हवाई किलों में रहने वाले ही नहीं हैं। आपने अपने को व्यावहारिक बनाने का भी निरंतर यत्न किया है। उदाहरण के लिये अपने देश की शिक्षा प्रणाली को जिस ढांचे में ढालने पर आज गान्धीजी इतना जोर दे रहे हैं, उसकी कल्पना आपने १६०८ में कर ली थी, और 'प्रेम-महाविद्यालय' उसी कल्पना का मूर्त रूप है। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने जो जादू दूसरे महायुद्ध के दिनों में कर दिखाया, उसकी भी कल्पना आपने १६१४—१८ के महायुद्ध का सूत्रपात होने के साथ ही कर ली थी। हिन्दू-मुस्लिम-समस्या को आपने अपने सार्वजनिक जीवन में हल करके एक आदर्श ही उपस्थित कर दिया है। इस समय आप किसानों और मजदूरों की समस्या को हल करने का एक उदाहरण उपस्थित करने जा रहे हैं। इस प्रकार आप पथ-प्रदर्शक के रूप में हमारे बीच में उपस्थित हैं पथ-पर्दशक की जीवनी से उसके देशवासियों को जो लाभ मिल सकता है। उसकी पूर्ति इस पुस्तक से यदि कुछ थोड़े से अंशों में भी हो सकी, तो हम अपने इस प्रयत्न को सफल हुआ मानेंगे।

इस पुस्तिका के अनेक प्रकरण ऐसे हैं, जिन पर कुछ अधिक प्रकाश डालने की आवश्यकता थी। उनमे से अनेक प्रकरणों की विशद चर्चा "टोकियो से इम्फाल" पुस्तक में की जा चुकी है।

इस संस्करण में, सम्भव है, जल्दी में कुछ कमी रह गई हो उसको हम दूसरे संस्करण में पूरा करने की कोशिश करेंगे।

हमें पूरा विश्वास है कि हमारे इस प्रयत्न का भी हिन्दी जगत हार्दिक स्वागत करेगा और यह पुस्तक भी पहली पुस्तकों के समान ही लोक-प्रिय होगी।

४० ए, हनुमान रोड,
नई दिल्ली
२६. ६. ४६

—सत्यदेव विद्यालंकार

एक नजर में

: १ :

क्रान्ति का पुजारी

अगस्त-क्रान्ति की संभावनामात्र से विचलित होकर १६४२ में अंग्रेज सरकार ने जिन लोगों को 'बागी' ठहरा दिया था और उनके अस्तित्व एवं महत्व को सर्वथा नष्ट करने के दृढ़ निश्चय और संकल्प से जिनको अज्ञात स्थानों में नजरबंद करके जनता की आंखों से सर्वथा ओझल कर उसकी स्मृति तक से दूर कर देने का सुनिश्चित प्रयत्न किया था, आज जब कि उसी सरकार ने अपने-से होकर केन्द्रीय शासन की सत्ता भी उन्हीं लोगों के हाथों में सौंप दी है, तब राजा महेन्द्रप्रताप सरीखे प्रचण्ड क्रांति के अन्यतम उपासक, घोर विद्रोह के एकनिष्ठ पुजारी और भीषण विप्लव के एकान्त साधक का इकत्तीस वर्षों के निर्वासन के बाद स्वदेश लौट आना कोई असाधारण घटना नहीं है। यदि कुछ वर्ष पहिले आप अंग्रेज सरकार के हाथ लग गये होते, तो निसन्देह, आपको 'आउट ला' ठहरा कर गोली का निशाना बना दिया जाता, 'बागी' बता कर शूली पर लटका दिया जाता और 'राजद्रोही' करार देकर आजन्म कैद की सजा देकर काले पानी पहुँचा दिया जाता। लेकिन, आज वे स्वदेश-वासियों के बीच में स्वतन्त्र नागरिक के रूप में उपस्थित हैं और स्वतन्त्रता के साथ अपने विचारों को भी प्रगट कर रहे हैं। देश में प्रबल वेग के साथ बढ़ती हुई राष्ट्रवाद की लहर का और पूर्ण वेग के साथ होने वाली राष्ट्रीय जागृति का यह स्वाभाविक परिणाम है। इसी लिये उनका स्वदेश आना कोई असाधारण घटना नहीं है। लेकिन, इकत्तीस वर्षों तक घोर प्रयत्न में निरन्तर लगे रहने और सर्वथा विपरीत परिस्थितियों में सुरक्षित बचे रहने की घटना निश्चय ही असाधारण है। आप सरीखे क्रांति के अनेक साधक देश को स्वाधीन देखने की लालसा लिये हुये विदेशों में इस जीवन की अन्तिम नींद सो गये। श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा, लाला हरदयाल

एम० ए०, मौलाना बरकतउल्ला और श्री रासबिहारी बोस सरीखों को स्वदेश को आजाद होते हुये देखने का सौभाग्य न मिल सका। राजा महेन्द्र-प्रताप ठीक उस समय स्वदेश लौटे हैं, जब कि देश महात्मा गांधी के और राजासाहब के भी शब्दों में आजादी के द्वार पर पहुंच गया है। छाया की तरह गुप्तचरों के रूप में यमराज के दूतों ने आपका पीछा किया, सर्वशक्तिसम्पन्न अंग्रेज सरकार ने आपको अपने चंगुल में फंसाने के लिये मछली पकड़ने वाले मछियारे की तरह कई बार अपना मायाजाल आपके चारों ओर फैलाया और कितनी ही बार मृत्यु की घोर घटा को सिर पर नाचता देखकर आपको भी अपने जीवन से निराश होजाना पड़ा होगा; लेकिन, उन सब विकट एवं असाधारण परिस्थितियों को पार कर अन्त में आप रामचन्द्र के चौदह वर्षों के संकटापन्न बनवास की तरह बत्तीस वर्ष पूरे करके स्वदेश लौट आये। स्वदेश लौटने की समस्त आशाओं को सम्भवतः आप भी तिलांजलि दे चुके होंगे और स्वदेश को आजाद होते हुये देखने की कल्पना शायद आपको भी न रही होगी। लेकिन, आपके भाग्यों में जो बदा था, उसको टाल कौन सकता था ! मन-वचन-कर्म से अहोरात्र जिस साधना में साधक लगा रहता है, उसमे वह सफल भी अवश्य होता ही है। राजासाहब अपनी साधना में निश्चय ही सफल हुये हैं।

राजासाहब का बत्तीस वर्षों का घटनामय जीवन, इस लम्बे जीवन की विस्मयजनक परिस्थितियों और उन विषम परिस्थितियों से पार होने के विवरण का कौतुकपूर्ण विवेचन रोचक, उत्साहप्रद और शिक्षादायक होने के साथ-साथ भारतीय क्रान्ति के उज्ज्वल इतिहास के अप्रकाशित पृष्ठों पर काफी प्रकाश डालने वाला है। यदि इन पृष्ठों को हम इतना उपयोगी बना सकते, तो हम अपने इस प्रयत्न पर फूले न समाते। लेकिन, यह काम सिवाय राजासाहब के दूसरा कोई कर नहीं सकता। उसके लिये आपकी जीवनी की नहीं, आत्मकथा की आवश्यकता है। इन पृष्ठों में हम एक महान्

क्रान्तिकारी, विप्लवी और विद्रोही जीवन की केवल एक झांकी उपस्थित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। महापुरुषों के महान् जीवन की महान् कहानी में उनके जो गहरे पद-चिह्न अङ्कित हो जाते हैं, वे उनके देशवासियों में स्फूर्ति, चेतना, प्रेरणा और साहस का संचार कर उनके हृदयों में महान् आकांक्षायें जगा जाते हैं। राजासाहब का त्यागमय निःस्वार्थ जीवन भी इसी कोटि का है। इसलिये इन पृष्ठों में उनके पदचिन्हों की केवल एक झांकी उपस्थित करने का यत्न किया गया है।

महात्मा गांधी द्वारा राजनीति में सत्य तथा अहिंसा के महान प्रयोग किये जाने पर भी और दक्षिण अफ्रीका में उसकी सफलता की एक झलक प्रगट हो जाने पर भी स्वदेश की आजादी के लिये सब प्रकार के उपायों से काम लेने में विश्वास रखने वालों की संख्या भी काफी रही है। फिर १६२० से पहिले जब कि 'भिक्षां देहि' की राजनीति का ही जोर था और 'होम रूल' का आंदोलन प्रचण्ड रूप में शुरू हो जाने पर भी राजनीति में स्वावलम्बन के तत्वों या भावों का पूरी तरह समावेश न हुआ था, तब गुलामी से ऊबे हुये और आजादी के लिये आतुर युवकों के सामने एक ही मार्ग था। उसी का अवलम्बन राजासाहब ने किया। इस मार्ग को अपनाने वालों ने जब देखा कि देश को निःशस्त्र बनाकर सर्वथा नपुंसक-सा बना दिया गया है, तब लाचार हो उन्हें विदेशों में से सहायता लेकर स्वदेश की आजादी के लिये प्रयत्न करना पड़ा। 'आजाद हिंद' की भावना और 'जयहिंद' के प्रवर्तक देश के महान् क्रांतिकारी नेता देशभक्त सुभाषचन्द्र बोस ने जो कुछ भी इस महायुद्ध के दिनों में पहिले बर्लिन में और बाद में मलाया तथा बर्मा में जाकर किया, वह सब राजासाहब ने १६१४-१८ के महायुद्ध के दिनों में किया था। दोनों ने स्वदेश से जर्मनी पहुँचकर अपने इन प्रयत्नों का श्रीगणेश किया था। लेकिन, दोनों में अँतर इतना ही है कि एक के कार्य का क्षेत्र देश की पश्चिमी सीमा थी और दूसरे की पूर्वीय सीमा। एक ने अराकान और इम्फालके मोर्चे पर खूनी जंग का सूत्रपात किया, तो दूसरे ने अफगानिस्तान के उस रास्ते पर

मोर्चा जमाया, जहां से इस देश पर पिछली सदियों में सदा ही हमले होते रहे थे। दोनों ने आजाद हिन्द की अस्थायी सरकार की स्थापना कर आजाद सेना की भी स्थापना की और सशस्त्र क्रान्ति द्वारा देश को स्वतन्त्र करने का प्रयत्न किया।

गुलाम देश को इस प्रकार स्वतन्त्र करने के लिये किये गये ये प्रयत्न पहिले ही न थे। इतिहास में ऐसे प्रयत्नों की शृंखला लगी हुई है। पददलित, दीन, हीन और पराधीन देशों ने सदा ही स्वाधीन राष्ट्रों की ओर आशाभरी दृष्टि से देखा है। वहां से सहानुभूति प्राप्त की, सामान जुटाये, सेनायें जुड़ाईं और स्वदेश में होने वाले आजादी के आन्दोलन को सफल बनाने के लिये आक्रमण तक किये। ऐसे प्रयत्नों के परिणाम कभी कभी उलटे भी हुये। स्वतन्त्र करने के लिये आने वाले ही उस देश के मालिक बन कर बैठ गये और उन्होंने अपनी गहरी गुलामी में वहां के लोगों को जकड़ लिया। लेकिन, ऐसे प्रयत्न सदा ही अभिशाप सिद्ध न होकर अधिकतर आशीर्वाद और वरदान ही सिद्ध हुये हैं। राजनीति में ऐसी आशा के बल पर जो खेल खेले जाते है, उनका विवेचन उनके परिणामों से न किया जा कर उनके पीछे रहने वाली सचाई, ईमानदारी, निःस्वार्थ साधना और उनके लिये किये जाने वाले निरन्तर प्रयत्न से किया जाना चाहिये। यही कारण है कि इस देश में विफल हुये प्रयत्न भी अपना ऐसा गहरा चिन्ह छोड़ जाते हैं कि वे दूसरों को उन्हें अपनाने के लिये अद्भुत प्रेरणा का काम कर जाते हैं। संसार का इतिहास ऐसे प्रेरक स्मृति-चिन्हों से भरा पड़ा है।

सुग्रीव और विभीषण ने रामायण के युग में जो किया था, वही मौर्य चन्द्रगुप्त ने मध्य युग में किया और आक्रांता के रूप में आने वाले सिकंदर की सहायता से नंद राज्य का खातमा करके स्वदेश में फिर से स्वतंत्र साम्राज्य की स्थापना की। जयचंद के मुहम्मद गौरी को और राणा सांगा के बाबर को निमन्त्रित करने के उदाहरण भी इस देश के इतिहास में मिलते हैं। इनका उलटा ही परिणाम हुआ और निमन्त्रित किये गये लोग यहां अपनी हकूमत कायम करके जम गये।

१७९२ के प्रचण्ड विद्रोह के बाद फ्रांस में क्या हुआ था ? मार्शल लफयाते ने बिदेशों में जा कर फ्रांस की आजादी के आन्दोलन का संगठन किया और अमेरिका की सशस्त्र सहायता प्राप्त की। उससे पहिले अमेरिका ने क्या किया था ? स्वतंत्रता की घोषणा करने पर फ्रांस से सहायता ली गई थी और वहां से अनेक जनरल भी अमेरिका बुलाये गये थे। इटली के सुप्रसिद्ध देशभक्त गैरीबाल्डी ने जिस प्रजातन्त्र को स्वदेश में कायम किया था, उसके लिये उसको विदेशों में कितना घोर प्रयत्न करना पड़ा था। मैजिनी ने इटली में रहकर जो प्रयत्न किया, वह शायद ही सफल हो सकता, यदि गैरीबाल्डी ने बाहर की सहायता प्राप्त न की होती। १८२८ में गैरीबाल्डी ने इटली पर बाहर से चढ़ाई की। भले ही उसकी वह सेना बहुत बड़ी न थी, फिर भी उसने रोम पर हमला बोल दिया और आस्ट्रिया की हकूमत का अपने देश से जनाजा उठा दिया।

फिलिपाइन्स के देशभक्तों ने भी इटली का अनुकरण किया; किन्तु वे सफल न हुये। स्वदेश की आजादी के आंदोलन के पुरस्कर्ता जनरल उगिनाल्डो ने साम्राज्यलोलुप स्पेनिश आक्रांताओं से स्वदेश की रक्षा के लिये अमेरिकन लोगों को निमन्त्रित किया। स्पेनिशों को पराजित करने के बाद अमेरिकनों के मुंह में पानी आ गया और वे वहां के मालिक बन गये। उनको निमन्त्रित करने वाले जनरल उगिनाल्डो को उनसे भी लोहा लेने को लाचार होना पड़ गया। उनके मुकाबले में वह सफल न हो सका। स्वदेश को स्वाधीन देखने के स्थान में उसे उसको पराधीन देखना पड़ गया।

महान् रूस के निर्माता, प्रचण्ड क्रांति के प्रवर्तक और पददलित मानवता को आशा का संदेश देने के लिये देवदूत के रूप में प्रगट होने वाले लेनिन भी स्वदेश को क्रूर जारशाही के पंजे से मुक्त कराने के लिये पहिले विश्व युद्ध में जर्मनी तक का सहारा लेने को तय्यार हो गये थे। लेकिन, अंधे कुंये से निकल कर इस प्रकार आग में गिरने की मूर्खता का ध्यान आते ही वे संभल गये और उन्होंने जर्मनी को निमंत्रण देकर भी उसको

अपने देशमे पैर न रखने दिया । उन्होंने दूरदर्शिता से काम लिया ।

इस महायुद्ध और पिछले महायुद्ध में भी यदि इग्लैण्ड को अमेरिका की सहायता न मिली होती, तो आज संसार का इतिहास और नकशा कुछ और ही होता। ब्रिटिश साम्राज्य तो क्या. ब्रिटिश सरकार का अस्तित्व भी सन्दिग्ध अवस्था पर पहुंच चुका था कि अमेरिका के धन-जन तथा शस्त्र की सहायता से वह विनाश से बच गया। अपने पैरों तले दबा कर गुलाम रखे गये हिन्दुस्तान से भी कितनी सहायता दोनों ही महायुद्धों में ली गई। युरोप में जर्मनी के पददलित हुये राष्ट्रों की निर्वासित सरकारें बेमुल्क हो जाने पर भी इंग्लैण्ड मे जा बिराजीं और मित्रराष्ट्रों की सहायता से उन्होंने अपने खोये हुये देश फिर से प्राप्त किये। इथोपिया के सम्राट हेल सिलासी ने भी ऐसा ही किया। पोलैण्ड, डेन्मार्क, फ्रांस, ग्रीस, चेकोस्लोवाकिया, हंगरी आदि सभी देशों ने विदेशों से सहायता प्राप्त की। बर्मा के गवर्नर अपनी सरकार के साथ हिन्दुस्तान मे आ कर शिमला में पड़े रहे। अमेरिका की सहायता से बर्मा में फिर से उनकी सरकार कायम हुई। विश्व की आज की अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति में अकेले रह कर किसी भी देश या राष्ट्र के लिये अपनी आजादी तो क्या, अस्तित्व तक की रक्षा करना संभव नहीं रहा है।

नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने अपने भाषणों में इस विषय का विस्तार के साथ चर्चा की है और यह भी बताया है कि अंग्रेजों के विरुद्ध वे जापान और जर्मनी से सहायता की अपेक्षा क्यों रखते थे? अपने एक सुप्रसिद्ध भाषण में गत महायुद्ध की घटनाओं से ली जाने वाली शिक्षा का उल्लेख करते हुये उन्होंने कहा था कि "हमने यह जाना कि चैकोस्लोवाकिया के नेता किस प्रकार अपनी आजादी के सम्बन्ध में प्रचार करने और आस्ट्रिया-हंगरी के विरुद्ध उसके दुश्मनों से सहायता लेने के लिये फ्रांस और इंग्लैंड गये थे। इनकी सहायता से युद्ध के बाद उन्होंने अपनी स्वतन्त्र सरकार कायम करने का अधिकार स्वीकार कराया। स्वदेश से बाहर रहने वाले चैकों की रंगरूट सेना खड़ी की गई। शत्रु के हाथों कैदी बनाये गये चैक

सैनिकों को भी चैक राष्ट्रीय सेना में भरती किया गया। २० हजार सैनिकों की यह सेना खड़ी की गई। आस्ट्रिया–हंगरी और जर्मनी के विरुद्ध इस सेना ने युद्ध की घोषणा की। इंग्लैंड और फ्रांस ने उसकी सहायता की। पोलों ने भी ३० हजार की सेना संगठित करके युद्ध में अपने देश की स्वतन्त्र सरकार की ओर से युद्ध में भाग लिया। चैक और पोलों ने युद्ध के बाद फिर अपनी सरकारें कायम कर लीं। कोई कारण नहीं कि हम भी उस रास्ते पर क्यों न चलें और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थितियों का इतिहास पढ़कर पूर्ण आजादी की प्राप्ति के लिये ब्रिटेन के शत्रुओं से मिल कर युद्ध क्यों न करें ? आयरलैण्ड के लोगों ने भी युद्ध से लाभ उठा कर सीन फीन पार्टी की तीन हजार की सेना तैयार कर ली, जो बाद में दस हजार तक पहुँच गई ! १९१६ में ईस्टर-विद्रोह में असफल होकर भी १९१९ में उन्होंने फिर विद्रोह कर दिया। तब केवल पांच हजार सैनिकों के सामने इंग्लैण्ड को घुटने टेक देने पड़े।”

इस सारे इतिहास का अध्ययन करने वाला देशभक्त अपने गुलाम देश को आजाद करने के लिये किसी विदेशी सरकार का यदि सहारा लेता है, तो वह कोई नयी बात नहीं करता। इतिहास उसको अपराधी नहीं बता सकता। उसकी पवित्र देशभक्ति पर किसी भी प्रकार का लांछन नहीं लगाया जा सकता। उसका निष्कलंक देशप्रेम उसके देशवासियों के लिये श्रद्धा, आदर, सम्मान और पूजा की चीज बने बिना नहीं रह सकता। आज इसी लिये राजा महेन्द्रप्रताप के देशवासी आपको सिरमाथे पर उठाये पूज रहे हैं। अपने देश की आजादी के लिये आपने इसी मार्ग को अपनाया था। अपने देश को आजाद करने के लिये आपने इंग्लैण्ड की दुश्मन विदेशी सत्ताओं को अपना साथ देने के लिये तय्यार कर लिया था। बत्तीस वर्ष की सुखोपभोग की आयु में अमन-चैन के जीवन को गौतम बुद्ध की तरह स्वेच्छा से तिलांजलि दे कर राजासाहब ने क्रान्तिकारी के उस जीवन को अपनाया, जिसमें नंगे पैरों कांटों से घिरे हुये रास्ते पर चलना पड़ता है, जिसमें न तो सुख की निश्चिन्त नींद

सोना मिलता है और न सन्तोष के साथ भरपेट खाना नसीब होता है। सिर हथेली पर रख राजासाहब ने यूरोप और एशिया के देशों का दौरा किया।। वहां के सब शासकों और राजाओं से मिले। काबुल में अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की और अफगान सेना तथा जर्मन सेना-विशेषज्ञों को साथ लेकर हिन्दुस्तान पर आक्रमण करने का प्रयत्न किया। १८५७ के बाद आजाद हिन्द सरकार की स्थापना का यह पहिला ही मौका था। हिन्दुस्तान में ही नहीं, किन्तु सारे ही संसार में इस प्रयत्न को विस्मय के साथ देखा गया। प्रयत्न सफल तो न हुआ, किन्तु वह ऐसी स्फूर्ति, प्रेरणा, चेतना। और भावना जरूर पैदा कर गया, जो हिन्दुस्तान में और हिन्दुस्तान से बाहर विदेशों में रहने वाले हिन्दुस्तानियों में भी घर कर गई। अनेक रूपों में उसकी गूंज कई बार सुनने में आई। समानान्तर सरकार कायम कर स्वतन्त्र सत्ता प्राप्त करने के स्वप्न को मूर्त रूप दे सकने की संभावना कल्पना की सीमा पार कर वास्तविक प्रतीत होने लगी। नेताजी सुभाषचन्द्र बोस ने इस महायुद्ध के दिनों में पूर्वीय एशिया में विशेष कर मलाया और बर्मा में जो कर दिखाया, उसको राजासाहब के इस प्रयत्न का ही विराट रूप कहना चाहिये। राजासाहब ने जिस इतिहास का श्रीगणेश किया था, उसको सुभाष बाबू ने चरम सीमा पर पहुंचा दिया।

इतनी भारी निराशा और असफलता पर बड़े बड़े महारथी भी धैर्य, साहस और हिम्मत खोकर आत्मघात कर लेते हैं। उनके हृदय की गति एकाएक बंद हो जाती है। इस भारी चोट को वे सहसा सहन नहीं कर सकते। लेकिन, राजासाहब का यह प्रयत्न किसी क्षणिक भावावेश का परिणाम न था। सहज भावुकता के वशीभूत होकर आपने यह खिलवाड़ किया था। देश की आजादी के लिये खूब विचार के बाद किये गये दृढ़ निश्चय का यह परिणाम था। इस लिये इस असफलता के बाद भी राजासाहब निराश न हुये। आपका हौसला टूटा नहीं। आपकी हिम्मत पस्त नहीं हुई। तुरन्त अपने को आपने नये प्रयत्नों की तय्यारी में लगा दिया

अज्ञातवास में कई वर्षों तक अंग्रेज सरकार और उनके गुप्तचरों ने आपका पीछा किया। पर, वे आपकी छाया तक का पता न पा सके। गहरे मनन और चिन्तन के बाद आपने अनुभव किया कि हिन्दुस्तान की आजादी विश्व के मानव की आजादी का ही एक पहलू है। देश, जाति और समाज की जिन सीमाओं ने एक मानव को अनेक राष्ट्रों में बांट दिया है, उनके दूर हुये बिना संसार में सच्ची स्वतन्त्रता और उससे पैदा होने वाले सच्चे सुख, सन्तोष तथा शान्ति का कायम होना सम्भव नहीं है। विश्व के नागरिक बन कर मानव प्रेम का सन्देशा ले कर आपने विश्व संघ की नींव डाली और इस महायुद्ध को विचलित कर देने वाली घोर घटाओं में भी आप चट्टान की तरह अपने इस आदर्श पर कायम रहे। आज भी आप के लिये स्वदेश की आजादी अपने इस महान मिशन का एक अनिवार्य अंग है। उसी की पूर्ति करने की महान् जिम्मेवारी को निभाने और देशवासियों के सुख-दुख में हाथ बटाने के लिये आप एक बार फिर हम सब के बीच में उपस्थित हैं।

: २ :

प्रारम्भिक जोवन

महाभारत की रणभूमि मे कायर अर्जुन को वीरता का उपदेश देकर शूरवीर बनाने वाले श्रीकृष्ण को जन्म देकर अपनी गोदी में खेल खिलाकर अमर हो जाने वाली बृज की पवित्र भूमि में और अपनी शूरवीरता की इतिहास के पन्नों पर अमिट छाप लगा जाने वाली वीर जाट जाति में राजा-साहब ने जन्म लेकर बृज भूमि और जाट जाति के उज्वल इतिहास में कुछ शानदार पन्ने और जोड़ दिये हैं। जिस राजघराने में आपका जन्म हुआ, उसका राज्य कभी बृजभूमि में दूर तक फैला हुआ था और मथुरा उसकी राजधानी थी। वीर जाट जाति का जो राज्य सिमट कर इस समय केवल भरतपुर तक सीमित रह गया है और वह भी सर्वथा स्वाधीन न होकर विदेशियों की कृपा पर निर्भर है, वह कभी शक्तिशाली विशाल राज्य के रूप में सारी बृजभूमि में और उसके बाहर भी फैला हुआ था। वह धौलपुर, भरतपुर, मुरसान, हाथरस और अलीगढ़ तक फैला हुआ था। पंजाब में सिख-साम्राज्य की स्थापना करने वाले पंजाबकेसरी महाराज रणजीतसिंह को भी इसी वीर जाति ने जन्म दिया था। मुलतान तक पहुँच कर इस वीर जाति के योद्धाओं ने महम्मद गजनवी पर आक्रमण करके उससे लोहा लिया था। १८०४-५ में भरतपुर-नरेश राजा रणजीतसिंह के नेतृत्व में इसने लार्ड लेक के छक्के छुड़ा दिये थे। उसकी वीरता से उसके बारे में यह कहावत प्रसिद्ध हो गई थी कि 'आठ फिरंगी नौ गोरा, लड़े जाट के दो छोरा।'

जाट जाति की वीरता का शानदार इतिहास लिखना अथवा उसकी वीरता को मिट्टी में मिलाकर उसको अपने आधीन बना लेने वाले अंग्रेजों की कुटिल दुर्नीति का परदा फाश करना इस छोटी-सी' पुस्तिका का मुख्य बिषय नहीं है। अपने चरित्रनायक के वंश और उस वंश के वीर पुरखों ने वीरता का

परिचय देकर हाथरस तथा अलीगढ़ आदि के किलों पर जिस प्रकार जान की बाजी लगा दी थी, उस सबकी भी चर्चा यहां नहीं की जा रही है। जिस फरेब, धोखे, भेद नीति तथा कूट नीति से अंग्रेजों ने उनके राज्य को छिन्न-भिन्न करके नष्ट-भ्रष्ट कर दिया, उसके विस्तार में भी हम यहां नहीं जाना चाहते। आपके पितामह ने भी अंग्रेजों के विरुद्ध भीषण युद्ध लड़ा था। उसमें पराजित होने से उनको अपने बहुत से राज्य से हाथ धोना पड़ गया था। १८५७ की भीषण क्रान्ति के समय आपके पिता और उनके कुछ साथियों ने अंग्रेजों का साथ दिया। उसका पुरस्कार भी उन लोगों को मिला। इसी सिलसिले में आपके पिता को मुरसान की इस्टेट दे दी गई और आपके पूर्वज फिर मथुरा आकर रहने लग गये। राजासाहब के पिता श्री घनश्यामसिंह को गद्दी पर बिठा कर राजा के पद से विभूषित किया गया। जिस घराने में आप गोदी गये, उसमें ठाकुर गोविन्दसिंहजी को ५० हजार रुपये नकद दिये गये। मथुरा तथा बुलन्दशहर के जिलों में कुछ गांव, राजा की उपाधि और राजभक्ति की सनद भी दी गई।

अगहन सुदी पंचमी अर्थात् ६ दिसम्बर १८८६ को मुरसान में कुंवर महेन्द्रप्रताप का जन्म हुआ कुंवर दत्तप्रसादसिंह और कुंवर बलदेवसिंह नाम के आपके दो भाई और थे। आप सबसे छोटे थे। हाथरस के राजा हरनारायण-सिंह ने आपको ढ़ाई वर्ष की आयु में गोद ले लिया। हाथरस के राजा बृन्दाबन में रहते थे। इस लिये आपको भी कृष्ण की तरह मथुरा छोड़ कर बृन्दाबन आ जाना पड़ा और यहीं आपका लालन-पालन हुआ। एक राजघराने में जन्म लेने और दूसरे में गोद जाने का परिणाम यह हुआ कि आप दो घरों के लाड़ले बेटे बन गये। दोनों घरों के लाड़-प्यार के वातावरण में पलने वाले राजकुमार और युवराज के सुखी जीवन की कल्पना सहज में की जा सकती है। दोनों घरों के लाड़ प्यार के समान दोनों घरों की जायदाद भी आपको मिली। हाथरस की जायदाद अलीगढ़ और मथुरा जिलों के अलावा बुलन्दशहर में भी फैली हुई थी। आप आठ ही वर्ष के थे कि आपके पिता राजा हरनारायण-

सिंह का स्वर्गवास हो गया। आप हाथरस के राजा घोषित किये गये। लेकिन, वयस्क न होने से आपकी जायदाद का प्रबन्ध कोर्ट आफ वार्डस के हाथों में दे दिया गया। वंश-परम्परा से ही आपके नाम के साथ राजा शब्द जुड़ गया है। आपका जन्म का नाम महेन्द्रप्रतापसिंह था। सिंह शब्द का बाद में प्रयोग करना आपने छोड़ दिया। विश्व प्रेम और विश्व संघ का मिशन अपने हाथ में लेने के बाद आपने अपना नाम "पीटर पीर प्रताप" रख लिया था।

अपनी प्रारम्भिक शिक्षा पूरी करने के बाद आपको मुहम्मडन ऐंग्लो ओरियंटल कालेज अलीगढ़ में भरती किया गया। यही कालेज बाद में मुस्लिम विश्वविद्यालय बन गया। मैट्रिक और एफ० ए० आपने यहीं से उत्तीर्ण किया। कालेज में आपकी गिनती बहुत होशियार विद्यार्थियों में की जाती थी। डाक्टर जियाउद्दीन सरीखे प्रोफेसरों से पढ़ने का आपको अवसर मिला। यही डाक्टर साहब अब सर जियाउद्दीन हैं और अलीगढ़ विश्वविद्यालय के कुलपति हैं।

पितामह की आजादी की भावनाओं का अंकुर विद्यार्थी-अवस्था में ही आपके हृदय में जम चुका था और उसमें विद्रोह की कोंपलें निकलनी शुरू हो गई थीं। बी० ए० में आप पढ़ते थे कि विद्यार्थियों ने हड़ताल कर दी। हड़ताल का कारण १६०७ में शहर में हुई प्रदर्शिनी में किसी विद्यार्थी की किसी पुलिस कांस्टेबल से कहासुनी हो जाना था। कहा सुनी के बाद जम कर लड़ाई हुई। अंग्रेज प्रिंसिपल ने विद्यार्थी को तीन मास के लिये कालेज से निकाल दिया। बात बहुत बढ़ गई। विद्यार्थियों की सभा में प्रिंसिपल और कुछ प्रोफेसरों ने अशिष्ट व्यवहार किया। विद्यार्थियों ने ऐसी भयानक हड़ताल की कि समाचार-पत्रों में भी उसकी चर्चा हुई। आपको उस हड़ताल का नेता माना गया और कालेज से अलग कर दिया गया। पढ़ाई छोड़ कर आप घर लौट आये। आगरा में कुछ दिन पढ़े। लेकिन, पढ़ाई यहां ही समाप्त हो गई।

सोलह वर्ष की आयु में आपका विवाह जींद के महाराज की छोटी बहिन से हो गया। घर के सब सुख, सम्पत्ति का सारा वैभव, पंजाब के एक बड़े

सिख राज्य से वैवाहिक सम्बन्ध होने का गौरव और सांसारिक चिन्ताओं से सर्वथा रहित आमोद-प्रमोद के सब साधन प्राप्त होने पर भी राजासाहब को मानसिक शान्ति न मिल सकी। अपने चारों ओर की दुनिया पर जब आप आंख डालते, तब गौतम बुद्ध की तरह आपका मन भी विकल हो उठता और आप अपनी स्थिति के प्रति असन्तोष अनुभव करने लगते। अपने चारों ओर आम जनता में फैली हुई गरीबी, भुखमरी, अशिक्षा, अज्ञानता और उससे पैदा होने वाले संकटों का ध्यान आते ही हृदय विकल हो उठता। अपने देश के करोड़ों भाइयों की इस दीन-हीन स्थिति का मिलान जब आप अपने सरीखे मुट्ठीभर धनवानों के साथ करते, तो आपका हृदय कांप उठता। यह ऊहापोह काफी समय तक चलता रहा। आपके मन में विचार पैदा हुआ कि दूसरे देशों की स्थिति का भी कुछ अध्ययन करना चाहिये और देखना चाहिये कि वहां इन समस्याओं को कैसे हल किया गया है ? इसी विचार से आपने १६०७ में यूरोप की यात्रा की। साथ में आप अपनी युवा पत्नी को भी ले गये। यूरोप के देशों की आपने विस्तृत यात्रा की। वहां के औद्योगिक विकास की ओर आपका सहसा ध्यान गया। अपने देश में वैसे ही उद्योग-धंधों के सूत्रपात करने की आवश्यकता आपने अनुभव की। औद्योगिक शिक्षा को आपने सब प्रकार की उन्नति का मूल समझा। इसलिये १६०८ में यूरोप से लौटने पर आपने इस पर खूब गहरा विचार किया। अपने जीवन को राजघराने के वातावरण से दूर करके सर्वसाधारण के पास लाने के लिये पहिला संकल्प आपने यह किया कि आपने अपने निजी और पारिवारिक खर्चों को सीमित कर दिया। एक बार यह भी विचार किया कि इस्टेट की सारी जायदाद दरिद्र-नारायण के चरणों में यह कहकर सौंप दी जाय कि 'त्वदीयं वस्तु गोविन्द ! तुभ्यमेव समर्पये।' लेकिन, एकाएक ऐसा करना संभव न था। कानूनी तौर पर भी आधी जायदाद पर आपकी सन्तान का अधिकार था। संकल्प-विकल्प के बाद आपने अपनी जायदाद को जनता-जनार्दन की सेवा के लिये अर्पण कर देने का निश्चय कर लिया।

अपनी जायदाद और अपने को लोक-सेवा के लिये उपयुक्त बनाने के विचार से आपने महामना मालवीय जी और सर तेजबहादुर सप्रू सरीखों के साथ सम्पर्क कायम किया। उनके साथ कई बार विचार-विनियम भी किया। वृन्दावन की सुप्रसिद्ध राष्ट्रीय संस्था प्रेम महाविद्यालय इसी साधना, संकल्प, विचार-विनिमय और अनुभूति का परिणाम है। बिना किसी भेदभाव के सभी जाति व सम्प्रदाय के युवकों को बिना किसी खर्च के औद्योगिक एवं यांत्रिक शिक्षा देना और देश में उद्योग-धंधों के विकास का सूत्रपात करना इस संस्था की स्थापना का प्रधान लक्ष्य था। १६०८ में ही इसकी स्थापना कर दी गई थी।

इस संस्था को विश्वविद्यालय का रूप देने की राजासाहब की आकांक्षा शुरू से ही थी। इसके लिये काफी खर्च करने और त्याग करने का आपका निश्चित संकल्प था। पहिले ही वर्ष में २५३०५ रु० १२ आ० २ पा० आपने खर्च किये। २५ अगस्त १६१० को आपने अपनी आधी जायदाद संस्था के नाम कर दी। इसकी कीमत तब पाँच लाख से ऊपर थी। बाद में अपना राजमहल, कचहरी और उसके आस-पास के जमुना तट पर बने हुये काशी घाट के मकानात भी विद्यालय के नाम कर दिये।

पाँच अप्रैल १६११ में आपने 'प्रेम' नाम से एक साप्ताहिक पत्र निकालना शुरू किया। आप ही उसके सम्पादक थे। दिसम्बर में यह पत्र भी संस्था को सौंप दिया गया और उसके मुखपत्र के रूप में निकलने लगा।

महाविद्यालय को उन्नत बनाने के लिये अनुभव प्राप्त करने और दूसरों के अनुभव से लाभ उठाने के लिये आपने सारे देश का दौरा किया। १६०६ में स्वास्थ्य खराब होने से आपको कुछ समय मसूरी में बिताना पड़ा। इन वर्षों में विदेश जाने की भी योजनायें बनाईं। १६०६ और १६१० में आपने विदेश जाने का यत्न किया। पर, जा न सके। १६११ में आप दुबारा युरोप गये। प्रायः सभी देशों के विश्वविद्यालयों का आपने अध्ययन किया। इंग्लैण्ड की संस्थाओं को आपने विशेष बारीकी के साथ देखा। जो भी अनु-

भव आप अपनी संस्था के लिये प्राप्त कर सके, आपने प्राप्त किये।

आर्य समाज की ओर से फरुखाबाद में जो गुरुकुल खोला गया था, उस को मथुरा लाने का योजना बनाने पर आपका वृन्दावन वाला बगीचा आपसे इसके लिये मांगा गया। पहिले तो आपने आर्यसमाजियों और सनातनियों का भेदभाव मिटाकर उनको एक करने के लिये कुछ शर्तें पेश कीं। उन शर्तों को स्वीकार न करके जब आर्यसमाजी उसके लिये आग्रह करते रहे, तब आपने वह विशाल बाग बिना किसी शर्त के दे दिया। इसको देते हुये आपने फिर भी यह कहा था कि मैं आर्यसमाजी नहीं, हिन्दू हूँ। यह संकल्प केवल इसलिये करता हूं कि हमारा आपका विरोध दूर हो और हम मिलकर काम करना सीखें।

१६१३ में आपने दक्षिण भारत का दौरा किया। इसी समय आपके पुत्र-रत्न का जन्म हुआ और प्रेम महाविद्यालय के अधिकारियों ने खुशी के इस अवसर पर दस रुपये महीने की चार छात्र वृत्तियों की घोषणा की। राजाजी को इससे सन्तोष न हुआ। आपने अपने पुत्र के हिस्से की जायदाद के गांवों में प्रारम्भिक विद्यालय खोलने के लिये २५ हजार के दान की उसी समय घोषणा की।

१६१४ में विश्वव्यापी महायुद्ध की काली घटायें संसार पर छा गईं। पितामह के आजादी के संस्कार अनुकूल परिस्थिति पाकर जाग उठे। उन्होंने अपने राज्य की स्वाधीनता की रक्षा के लिये अंग्रेजों से लोहा लिया था। राजासाहब ने देश की आजादी के लिये कुछ करने का संकल्प किया। विद्यार्थी-अवस्था में पैदा हुई विद्रोह की भावना फुंकार मारती हुई नागिन की तरह उठ खड़ी हुई। महायुद्ध से पैदा हुई परिस्थिति से लाभ उठाने का आपने निश्चय किया। किसी विदेशी सत्ता की सहायता से देशवासियों के गले से गुलामी का तौक उतार भारत माता की गुलामी के बन्धनों को काटने का सुदृढ़ विचार करके आपने विदेश जाने की योजना बनाई। १६१४ में आप बम्बई से यूरोप के लिये विदा हो गये।

यूरोप जाने से पहिले आपने देहरादून से "निर्बल सेवक" नाम का

साप्ताहिक पत्र शुरू किया था। पत्र अपने ढंग का एक ही था। आपके यूरोप जाने पर वह बंद हो गया। राजासाहब स्वयं इसका सम्पादन करते, मुख्य लेख तथा टिप्पणियां लिखा करते और उसमें सामाजिक, धार्मिक तथा राजनीतिक निर्बलताओं की चर्चा किया करते थे।

जापान में सन् १९२३ में
सुप्रसिद्ध क्रान्तिकारी श्री रासबिहारी बोस और जापान के श्री तोयामा के साथ राजा महेन्द्रप्रताप ।

राजा महेन्द्रप्रतापसिंह
(युवावस्था के प्रारम्भिक दिनों के वेष में)

: ३ :

प्रेम महाविद्यालय

राजा साहब अपनी इच्छा, आकांक्षा तथा योजना के अनुसार प्रेम महाविद्यालय का विकास एवं निर्माण नहीं कर सके और आपकी अनुपस्थिति में उसकी स्थिति अनाथ बालक की-सी हो गई; फिर भी वह आपकी देश को एक महान देन है। काशी को स्वर्गीय देशभक्त बाबू शिवप्रसादजी गुप्त ने जिस रूप में विद्यापीठ दिया है और अमरशहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी ने जिस रूप में अपने देश को गुरुकुल प्रदान किया था, राजा साहब ने उसी रूप में इस महाविद्यालय की स्थापना की थी। अपने अस्तित्व की तनिक भी परवा न कर जिन संस्थाओं ने राष्ट्रीय संघर्ष के दिनों में अपने को होम दिया, उनमें प्रेम महाविद्यालय का नाम सदा ही गौरव से लिया जाता रहेगा। कोई आन्दोलन ऐसा नहीं गया, जिसमें प्रेम महाविद्यालय को सरकार ने अपने प्रकोप का शिकार न बनाया हो और उसने अपनी शानदार आहुति राष्ट्रीय महायज्ञ में न दी हो। अपने सर्वस्व को होम देने वाले राजा साहब की सन्तान इस संस्था ने अपने को योग्य पिता की सुयोग्य सन्तान सिद्ध कर दिया।

१९४२ की प्रचण्ड क्रान्ति के साथ अगस्त का महीना सारे हिन्दुस्तानियों के लिये स्मरणीय बन गया है। यह एक सुयोग ही था कि १९०८ में इसी मास की पहली तारीख को महाविद्यालय की स्थापना की गई थी। उसमें औद्योगिक विभाग २४ मई १९०९ को खोला गया था और इसकी बाकायदा रजिष्ट्री कराई गई थी।

संस्था के आदर्श निम्न लिखित नियत किये गये थे:—समता, एकता, स्वतन्त्रता, देशभक्ति, सार्वभौम भ्रातृ-भाव भिन्न-भिन्न धर्मों, जातियों व वर्गों, सम्प्रदायों तथा देश के लोगों में किसी भी प्रकार के भेद-भाव का सर्वथा अभाव संस्था के इन आदर्शों में राजा साहब की वे सभी भावनायें साफ झलक रही हैं,

जिनसे प्रेरित होकर आपने अपने को विश्व नागरिक बनाकर विश्व-प्रेम का सन्देशा लेकर विश्व-संघ की स्थापना की है।

संस्था की स्थापना जिन उद्देश्यों को सामने रखकर की गई थी, उनमें लिखा गया था कि संस्था (१) आम जनता में प्रारम्भिक शिक्षा का प्रसार करेगी, (२) औद्योगिक एवं यान्त्रिक तथा बौद्धिक उच्च शिक्षा की व्यवस्था करेगी, (३) स्वास्थ्य-रक्षा का महत्व बतायेगी, (४) जीवन-यापन के धरातल को ऊँचा करके सामाजिक बुराइयों को दूर करने का यत्न करेगी, (५) देश के नष्ट होते हुये उद्योग धन्धों की रक्षा करते हुये उनका आधुनिक ढग पर विकास करेगी, (६) आवश्यकता के अनुसार पश्चिमीय सभ्यता का सहारा लेते हुये संयुक्त भारतीय राष्ट्र के निर्माण का प्रयत्न किया जायगा, (७) इन उद्देश्यो की पूर्ति के लिये यन्त्र-कला, इंजिनियरी, कृषि तथा बौद्धिक-शिक्षण के लिये उपयुक्त स्थान पर कालेज कायम किया जायगा।

संस्था के संचालन तथा प्रबन्ध के लिये डाइरेक्टरों का एक बोर्ड बनाया गया था। संचालन समिति के हाथों में सारा प्रबन्ध सौंपा गया। राजा साहब पहले प्रधान अधिष्ठाता नियुक्त किये गये। संचालन समिति के भी राजा साहब ही मन्त्री नियुक्त किये गये। उसके दो अन्य सदस्य थे कुंवर बलदेवसिंह और गोस्वामी राधाचरण।

शिक्षा में साधारण बौद्धिक शिक्षा के अलावा यान्त्रिक एवं औद्योगिक शिक्षा पर विशेष ध्यान दिया गया। शिक्षा को कम-खर्चीली और यथासम्भव निःशुल्क बनाने का ध्येय सामने रखा गया। लोहार, बढ़ई, कुम्हार, आदि के घरेलू उद्योग-धंधों का धरातल ऊंचा करके ऊंची बौद्धिक शिक्षा देने का क्रम शुरू किया गया। व्यापारिक विषयों पर विशेष शिक्षा दी जाने लगी। स्नातकों को 'तन्तुवाय', 'शिल्पकार' और 'विश्वकर्मा' की उपाधि देने का निश्चय किया गया।

शिक्षा के इस क्रम से यह भी स्पष्ट है कि इस समय महात्मा गांधी जिस शिक्षा-क्रम पर इतना जोर दे रहे हैं और सरकार की शिक्षा-पद्धति

के दिवालिया सिद्ध हो जाने पर जिस शिक्षा-क्रम की ओर देश का ध्यान आकर्षित हुआ है उसकी कल्पना राजा साहब ने १९०७ में तब की थी जब कि राष्ट्रवाद अथवा राष्ट्रीय प्रवृत्तियों का देश में अभी श्रीगणेश ही हुआ था। राजासाहब ने अपनी कल्पना को मूर्त रूप देने का सराहनीय प्रयत्न भी किया। यदि कहीं राजा साहब के संरक्षण में महाविद्यालय का विकास हो पाता तो आज उसका रूप आश्चर्य नहीं कि अनेक संस्थाओं के समान बहुत विराट बन गया होता। लेकिन! तब शायद राष्ट्रीय महायज्ञों में इतनी शानदार आहुति दे सकना संभव न रहता। संस्था के विशाल या विराट होने पर उसका मोह उसके संचालकों को निश्चय ही निर्बल बना देता है।

फिर भी संस्था का जो विकास हुआ उस पर कुछ प्रकाश डालना आवश्यक है। २४ मई १९०९ में औद्योगिक विभाग की स्थापना होने पर प्रो० महेशचरण सिन्हा बी० ए०, एम० एस० सी० उसके अध्यक्ष नियुक्त किये गये। इसी वर्ष में देश में प्लेग का भीषण आक्रमण हुआ। महाविद्यालय भी उससे अछूता न बच सका। उसको बंद कर देना पड़ा। ८ दिसम्बर १९०८ को राजासाहब भी बीमार पड़ गये। मार्च १९१० में आपको मसूरी जाना पड़ गया। १८ अप्रैल १९१० को महाविद्यालय फिर खुला, तो विद्यार्थी बहुत कम रह गये। मई १९१० तक राजासाहब के संस्था पर २५३०५ रुपये १२ आने २ पाई खर्च हुये २५ अगस्त १९१० को जो जायदाद आपने भेंट की उसकी सालाना आमदनी २७ हजार रुपया थी। बाद में आपने दो बड़ी इमारतें भी संस्था को अर्पित कर दीं।

एक यूरोपियन अध्यापिका की संरक्षकता में १९१० में किण्डरगार्टन के ढंग पर भी पढ़ाई शुरू की गई। परन्तु वह अधिक दिन न चल सकी। आबहवा के प्रतिकूल होने से वह वहां न रह सकी।

महाविद्यालय में मेशीनरी और उसके पुस्तकालय में पुस्तकों की संख्या बढ़ाने का निरन्तर प्रयत्न किया गया। महाविद्यालय के उत्सव के अलावा मथुरा में प्रतिवर्ष एक प्रदर्शिनी भी की जाने लगी। इससे संस्था इतनी लोक-

प्रिय हुई कि उत्सुक विद्यार्थियों को स्थानाभाव के कारण भरती करने से इन्कार तक करना पड़ा। एक बार तो चालीस विद्यार्थियों को इस प्रकार निराश किया गया। इलाहाबाद में भी एक प्रदर्शिनी की योजना की गयी थी। उसके लिये विद्यार्थियों और प्रोफेसरों को काफी संख्या मे भेजा गया था। इस सारे प्रयत्न में २८१८ रु० १३ आने व्यय आये। इससे पता चलता है कि आपने महाविद्यालय को लोकप्रिय बनाने और विद्यार्थियों को उत्साहित करने के लिये कितना प्रयत्न किया जाता था ।

वार्षिक उत्सव पर महाविद्यालय की रिपोर्ट पेश करते हुये राजा साहब सदा ही हृदयग्राही शब्दों में मार्मिक अपील किया करते थे। आप कहा करते थे कि "शिक्षा की ढाल से ही हम अज्ञानता और मिथ्या अन्ध विश्वास रूपी दुश्मनों से अपनी रक्षा कर सकते हैं और ज्ञान के प्रकाश से हमें अपने देश से अज्ञान का अन्धकार दूर भगा देना है।"

१९१०-११ में महाविद्यालय में कई नये विभाग खोले गये। एक दवाखाना भी खोला गया जिससे जनता भी लाभ उठा सकती थी। दस वर्ष तक यह दवाखाना चलता रहा। १९२१ में इसको लाचार होकर बंद कर देना पड़ा। १९१०-११ में महाविद्यालय की आमदनी २८१६३ रु० ३ आना थी और खर्च था केवल १८९१० रु० ७ आना २ पाई। १९१२-१३ में आमदनी दुगुनी होकर ४४ हजार से ऊपर और खर्च ३१८४१ रु० पहुँच गया।

१५ अप्रेल १९१० से मासिक रूप में 'प्रेम' पत्रिका राजा साहब के सम्पादकत्व में शुरू की गई। दिसम्बर १९११ में इसको महाविद्यालय की मुखपत्रिका बना दिया गया। ८ अक्टूबर १९१३ में उसको साप्ताहिक रूप दे दिया गया। १९ जुलाई १९१९ में उसका प्रकाशन बन्द होकर १५ जुलाई १९२० से वह फिर प्रकाशित होने लगा। अब इसमें राजनीति की भी चर्चा होने लगी। इस पत्र को भी कई बार सरकारी प्रकोप का शिकार होना पड़ा और कई बार भारी जमानतें भी पत्र से मांगी गई।

१९११ में महाविद्यालय के कला-घर यानी कारखाने को केला-कुंज

से उठाकर काशी घाट की इमारतों में लाकर फिर से व्यवस्थित किया गया। इसी वर्ष महाविद्यालय के अपने प्रेस की भी स्थापना की गई। हिन्दी और अंग्रेजी में छपाई का काम होने लगा। प्रेस के काम को सिखाने के लिये विशेष कक्षा भी खोली गई। जिल्दसाजी भी सिखाई जाने लगी।

१९११ में राजासाहब दिल्ली के शाही दरबार में शामिल हुये। महाविद्यालय के अनेक विद्यार्थियो को भी आप अपने साथ ले गये। दिल्ली में आप तम्बुओं में ठहरे। देश-विदेशों से आने वाले सब धर्मों के सुप्रतिष्ठित लोगो के नाम आपने एकता और प्रेम का सन्देश जारी किया।

१९१३ मे पुत्र उत्पन्न होने की खुशी में किये गये २० हजार के दान से मथुरा जिले के गावों मे चार और बुलन्दशहर जिले में दो प्रेम-विद्यालयों की स्थापना की गई।

१९१३ में महाविद्यालय में प्रेम-क्लब की भी स्थापना की गई। यह सिर्फ विद्यार्थियों के लिये कायम की गई थी। इसमें सब तरह के खेलों का प्रबन्ध किया गया। आस-पास के जिलों में होने वाले खेलों में महाविद्यालय के छात्र नाम पैदा करने लगे। इसी वर्ष देश-पूज्य महामना मालवीय जी ने अपने पदार्पण से महाविद्यालय को पवित्र किया और उसकी प्रगति पर परम सन्तोष प्रगट किया। प्रान्त के गवर्नर भी महाविद्यालय में पधारे।

१९१३-१४ के वार्षिक उत्सव पर राजा साहब ने महाविद्यालय में सर्वथा निःशुल्क शिक्षा देने की घोषणा की। आपने कहा कि शिक्षा का लक्ष्य मानव समाज की सेवा करना है और वह सेवा बिना किसी प्रकार के शुल्क के की जानी चाहिये। महाविद्यालय को किसी सरकारी विश्वविद्यालय से सम्बन्धित न करने का कारण बताते हुये आपने कहा कि हमारा लक्ष्य और मार्ग उनसे सर्वथा भिन्न है। हमारा लक्ष्य समाज को स्वावलम्बी बनाना है। पैसा नहीं, किन्तु सेवा हमारा उद्देश्य है। इसी वर्ष नई मेशीनरी खरीदकर कला-घर को और बढ़ाया गया। १९१४ में विद्यार्थी आश्रम केला-कुंज और आवागढ़-कुंज से राजा साहब द्वारा दिये गये उनके राजमहल में लाया गया। इसी

वर्ष शिक्षा-समिति का संगठन किया गया। उस द्वारा बनाये गये नये शिक्षा-क्रम के अनुसार संस्कृत का अध्ययन भी शुरू किया गया और विज्ञान का अध्ययन अनिवार्य कर दिया गया। औद्योगिक शिक्षा के सहायकरूप में विज्ञान की पढ़ाई आवश्यक ठहराई गई।

१९१४ में देश की दो महान् विभूतियों ने महाविद्यालय में पधारकर उसको उपकृत किया। महर्षि रवीन्द्रनाथ टैगोर २ अक्तूबर १९१४ को पधारे। आपने लिखा था कि "महाविद्यालय में मैंने जो कुछ देखा, उसका मुझ पर बहुत गहरा असर पड़ा और मैं इसकी हर प्रकार से सफलता चाहता हूँ।" वर्ष के अन्त में महात्मा गान्धी पधारे। आपने लिखा था कि महाविद्यालय को देखकर मेरे मन में तरह-तरह के विचार पैदा हुये। यहां कोई भी चीज ऐसी नहीं है, जो दर्शनीय न हो। उसके संस्थापक को जितनी बधाई दी जाय कम है।" दोनों महानुभावों के शब्दों से यह साफ झलकता है कि उन्होंने राजा साहब के इस सत्प्रयत्न को सराहने के साथ-साथ उनसे प्रेरणा और स्फूर्ति भी प्राप्त की थी।

दिसम्बर १९१४ में राजाजी के हिन्दुस्तान से बाहर चले जाने के बाद महाविद्यालय का संचालन प्रबन्ध-समिति करती रही। राजाजी के सामने महाविद्यालय और उसको दी हुई जमींदारी का प्रबन्ध अलग-अलग होता था। १९१६ तक यह व्यवस्था उसी प्रकार चलती रही। उसके बाद जमींदारी का प्रबन्ध भी महाविद्यालय के केन्द्रीय कार्यालय के आधीन कर दिया गया और दोनों की व्यवस्था एक साथ होने लगी। विद्यार्थियों की संख्या तब २५० तक पहुंच गई थी। सभी जातियों के विद्यार्थी उनमें शामिल थे। इसी वर्ष महाविद्यालय और कला-घर को अलग-अलग कर दिया गया। १९२० में कला-घर में कताई-बुनाई का सिखाना भी शुरू किया गया। १९२२ में यह काम स्त्रियों को सिखाने के लिये एक विशेष कक्षा खोली गई।

१९२१ में कला-घर के शिक्षण-क्रम में फिर से कुछ सुधार और परिवर्तन किये गये। विज्ञान तथा इंजिनियरिंग आदि के सम्बन्ध में पुस्तकों

का हिन्दी में उल्था करने का काम भी हाथ में लिया गया। इनके अभाव में विद्यार्थियों को बहुत असुविधा उठानी पड़ती थी।

पं० जवाहरलाल नेहरू और सेठ निहालसिंह इस वर्ष महाविद्यालय में पधारे। नेहरू जी ने महाविद्यालय के कार्य पर प्रसन्नता प्रकट की और सेठ निहालसिंह ने उसके भविष्य को अत्यन्त उज्ज्वल बताया।

इस प्रकार राजा साहब की अनुपस्थिति में भी उनकी संस्था बढ़ते हुए पौधे की तरह फलती-फूलती गई। सरकारी नौकरी प्राप्त करने का साधन न होने पर भी सभ्य नागरिक तथा स्वावलम्बी जीवन बनाने के कारण उसका आकर्षण बढ़ता चला गया। यही राजा साहब का लक्ष्य था। सरकारी दफ्तरों में नौकरी करके स्वदेश को गुलामी में जकड़ने वाले क्लर्क पैदा करने की अपेक्षा उसको स्वाधीन करने की आकांक्षा रखने वाले स्वतन्त्र और स्वाश्रयी युवक पैदा करना उनका लक्ष्य था। इसकी पूर्ति में उनकी संस्था निरन्तर लगी रही। १९३२ तक संस्था का कार्य बिना किसी विशेष घटना के चलता रहा। वार्षिक उत्सव भी होते रहे।

१९२०-२१ के प्रचण्ड आन्दोलन के बाद १९२९ में लाहौर में स्वतंत्रता का प्रस्ताव पास होने और प्रतिवर्ष २६ जनवरी को आजादी दिवस मनाये जाने की घोषणा के साथ देश में नयी राजनीतिक हलचल शुरू हुई। साइमन कमीशन के बहिष्कार से उसमें और गरमी पैदा हुई। नमक-सत्याग्रह के रूप में सविनय अवज्ञा भंग का आन्दोलन पूरे वेग के साथ शुरू हुआ। महाविद्यालय भी इससे बच न सका। महाविद्यालय के आचार्य, प्रोफेसर और विद्यार्थी उस महान् आन्दोलन में जूझ पड़े, जिसने भारत में अंग्रेजी राज की जड़ हिला दी। सरकारी दमन की आंधी से भी विद्यालय बच न सका। महाविद्यालय को गैरकानूनी ठहराकर सरकार ने उस पर अपना ताला लटका दिया। १९३८ तक उस पर सरकार का ताला पड़ा रहा। इतनी लोकोपकारी संस्था की उपयोगिता को भी विदेशी सरकार सहन न कर सकी। १९३६ में प्रान्त में कांग्रेस का मन्त्रिमण्डल बनने पर

श्री पन्तजी की सरकार ने उसको सरकारी बंधनों से मुक्त किया। सात वर्षों में हुई संस्था की हानि का अनुमान लगाना कठिन नहीं है। अस्त-व्यस्त अवस्था में संस्था अधिकारियों को सौंपी गई। कीमती कागजात गायब हो चुके थे। मशीनों को जंग खा चुका था। दीवारों की टूट-फूट की मरम्मत तो क्या हो होनी थी, किसी ने सफेदी तक न कराई थी। जायदाद और जमींदारी का भी बुरा हाल कर दिया गया था। ३० हजार रुपया सालाना की आमदनी घटकर केवल १८ हजार रह गई। फिर भी १९३८–३९ में नये सिरे से सारा काम शुरू किया गया। ४० विद्यार्थी भरती हुये। १९११९) की नयी मैशीनरी खरीदी गई। नया स्टाफ रखा गया। मोटरों के सुधारने आदि का काम भी सिखाया जाने लगा। महाविद्यालय को प्रगति करने और पुराना स्वरूप प्राप्त करने में अधिक समय नहीं लगा। कला-घर और विद्यार्थी-आश्रम के स्थान अपर्याप्त प्रतीत होने लगे। उसके लिये विशाल स्थान की खोज की जाने लगी और मथुरा-वृन्दावन सड़क पर २०० एकड़ जमीन खरीद ली गई। १९४० में इसमें मकान बनाने शुरू किये गये, जो कि लगभग पूरे हो चुके हैं।

संस्था की नयी इमारत जब पूरी होने को है, तब उसके संस्थापक का बत्तीस वर्षों के लम्बे अरसे के बाद फिर आ पहुँचना उसका अहोभाग्य ही समझा जाना चाहिये। अब यह आशा की जा सकती है कि १९०८ में जिस महान् संस्था की एक मिशन के रूप में राजा साहब ने नींव डाली थी, १९४८ में वह आपकी संरक्षकता में विशाल रूप धारण कर उस मिशन को सफल बनाने में तेजी के साथ अग्रसर होगी। राष्ट्रीय सरकार कायम होने के इस युग में यह भी आशा की जा सकती है कि सात वर्षों में संस्था की जो हानि हुई है, उसकी क्षतिपूर्ति चक्रवृद्धि व्याज के साथ हो जायगी। राष्ट्रीय सरकार की छत्रछाया में राष्ट्रीय संस्थाओं का पनपना सुनिश्चित है। इसीलिये राजा साहब की इस संस्था का भविष्य भी निश्चय ही उज्ज्वल है।

: ४ :

विदेश-गमन

जब १९१४ के महायुद्ध की लपटें यूरोप में फैल गईं और इंग्लैंड के लिये अत्यन्त विकट समस्या उपस्थित हो गयी, तब राजा साहब ने अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति का खूब गहरा अध्ययन करने के बाद तत्कालीन परस्थितियों से लाभ उठाने और स्वदेश को आजाद करने के लिये सुविख्यात प्रयत्न में अपने को लगा देने का संकल्प किया। मुट्ठीभर लोगों के हाथों में करोड़ों देश-वासियों का गुलाम बने रहना आपको असह्य हो गया। यह विचार आते ही आपके हृदय में गहरी वेदना पैदा होती और आप अधीर होकर रह जाते। आपने यह सोचा कि यदि जर्मनी ने इंग्लैण्ड को परास्त कर लिया तो उसकी सहायता से स्वदेश को स्वाधीन किया जा सकेगा। कई मित्रो से आपने चर्चा और विचार-विनिमय किया। अन्त में यह तय हुआ कि राजा साहब को स्वयं यूरोप जाकर जर्मनी की सहायता प्राप्त करने का यत्न करना चाहिये।

यूरोप जाने के विचार में आप मग्न थे कि उससे पहिले आप कुछ दिनों के लिये देहरादून गये और वहाँ अपने निवास-स्थान-धर्म में ठहरे हुये थे। एकदिन युक्तप्रान्तीय असेम्बली के वर्तमान प्रधान श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन आपसे मिलने आये। टण्डनजी नाभा के राजा रिपुदमनसिंह के वकील बनकर वहां गये थे। राजा साहब ने आपसे भी जर्मनी जाने के सम्बन्ध में चर्चा की। टण्डनजी की सम्मति में रूस जाना अधिक अच्छा था। किन्तु रूस इंग्लैण्ड का साथी था। टण्डनजी की राय यह थी कि रूस कृषिप्रधान देश होने से हिन्दुस्तान के साथ अधिक मिलता-जुलता है और उसकी सहानुभूति सहज में प्राप्त की जा सकती है।

राजा साहब ने पासपोर्ट के लिये लिखा-पढ़ी शुरू की। स्विटजरलैण्ड जकेनेलिये आपने अनुमति मांगी। लेकिन, अनुमति की प्रतीक्षा न करके आप बम्बई चल दिये। इटालियन जहाज में थामस कुक एण्ड सन्स की

मार्फत आपने अपने लिये स्थान का भी प्रबन्ध कर लिया। लेकिन, ठीक समय पर पासपोर्ट न आया और इटालियन जहाज पासपोर्ट के बिना आपको लेजाने को तय्यार न हुआ। थामस कुक एंड सन्स ने इंग्लैंड के लिये बिना पासपोर्ट भी जाने का प्रबन्ध कर देने का भरोसा दिलाया। राजा साहब इंग्लैंड जाने को तय्यार हो गये। अपने लिये आपने पहिले दर्जे का और अपने साथी श्री हरिश्चन्द्र विद्यालंकार के लिये दूसरे दर्जे का टिकिट खरीद लिया। श्री हरिश्चन्द्रजी अमर शहीद स्वामी श्रद्धानन्दजी के बड़े लड़के थे। २८ दिसम्बर १९१५ को आप, पी एंड ओ जहाज से बिना पासपोर्ट लन्दन के लिये विदा हो गये। जनेवा के पते पर अपना पासपोर्ट भेजने की थामस कुक एंड सन्स को आप हिदायत देते गये।

युद्ध पूरे यौवन पर था। लाल सागर में ही उसकी लपटें अनुभव होने लगी थीं। यहीं पर जहाज की खिड़कियां ढक दी गईं, झरोखे बंद कर दिये गये और रोशनी बाहर न पड़ने का पूरा प्रबन्ध कर दिया गया। जर्मन पनडुब्बियों के भय से वह सब किया गया था। लेकिन भूमध्य सागर में संकट और भी अधिक था। वास्तविक भय तो यहां ही था। राजा साहब के जहाज के कप्तान ने इस भय और संकट से बचने के लिये सब उपायों से काम लिया। कई बार उसको अपना रास्ता तक बदलने को मजबूर होना पड़ा।

: ५ :

सरकारी प्रकोप

जहाज के मार्सलीज पहुँचने, वहां से राजा साहब के स्विटजरलैंड होकर जर्मनी पहुंचने और अपने महान् मिशन में अपने को लगाने की रहस्यपूर्ण कथा से पहिले इस प्रकार आपके विदेश जाने से जो प्रतिक्रिया इस देश में हुई उसका वर्णन यहा ही कर दिया जाना आवश्यक है। यूरोप के आपके पते पर भेजे गये पत्र वगैरा और मनीआर्डर भी जब आपको न मिलकर वापस आने लग गये, तब घर वालों को चिन्ता हुई। उन्होंने आपका पता लगाने का यत्न किया, किन्तु कहीं भी कुछ भी पता नहीं चला। आपकी खोज-खबर और पता लगाने के लिये भेजे गये पत्रों का भी निश्चित उत्तर नहीं मिला। कुछ भी पता न पाकर अन्त में कुंवर हुक्मसिंह जी ने समाचार-पत्रों में विज्ञापन दिये। जनेवा में जिस परिचित पादरी के यहां आप ठहरे थे उसने उस विज्ञापन को पढ़कर एक पत्र दिया, जिसमें आपकी प्रशंसा करते हुये ठीक-ठीक पता कुछ भी नहीं दिया इतना अवश्य लिखा कि मुझे पता लगेगा तो मैं फिर लिखूंगा।

सरकार ने आपको बागी करार देकर आपकी सारी जायदाद जब्त कर ली और आपकी स्त्री तथा बच्चों के लिये नियत खर्च बांध दिया। १९२३ में इम्पीरियल कौंसिल में इसके लिये विशेष कानून बनाया गया। राजासाहब के सुपुत्र श्री प्रेमप्रताप की स्थिति जायदाद के केवल वेतन भोगी मैनेजर की-सी बना दी गई।

वायसराय की कौंसिल और पार्लमेण्ट तक में भी आपके बारे में चर्चा हुई। १९२३ में वायसराय की कौंसिल में सवाल करने पर सरकार की ओर से दिये गये लम्बे वक्तव्य में कहा गया था कि भारत सरकार को मई सन् १९१६ ई० में कुंवर महेन्द्रप्रतापसिंह की यूरोप में बागियाना कार्रवाइयों का हाल मालूम हुआ। इस कारण यह उचित समझा गया कि

उनकी जायदाद की आय का कुछ भी भाग उनको अपने प्रचार के लिये न पहुंचे। यह उचित समझा गया कि उनकी जायदाद, रेग्यूलेशन नं० ३ सन् १८१८ के अनुसार कुर्क कर ली जावे। अतएव १ जुलाई सन् १९१९ को वह कुर्क कर ली गई। ऐसा ज्ञात होता है कि भारत सरकार को कुंवर महेन्द्रप्रतापसिंह के भारत वापिस आने में कोई आपत्ति नहीं है, यदि वे आवेंगे तो न्यायालय में उनका विचार किया जायगा। भारत सरकार जायदाद कुंवर महेन्द्रप्रतापसिंह के नाबालिग लड़के को देना और कुंवर साहब के निजी अधिकारों को समाप्त करना तजवीज करता है। सन् १९१९ ई० में उनकी जायदाद की जायद आमदनी दस हजार रुपया माहवार थी और साढ़े बाईस हजार रुपया बचता था। कुंवर महेन्द्रप्रतापसिंह की धर्मपत्नी जींद के राजा रणबीरसिंह की बहिन को २००) मासिक और उनके बच्चों को ४००) रुपया मासिक जिसमें एक यूरोपियन आया (दाई) का वेतन भी सम्मिलित है, दिया जाता है। भारत सरकार कुंवर महेन्द्रप्रतापसिंह के राजनीतिक और शिक्षा सम्बन्धी कार्यों से केवल इतनी ही परिचित है कि वे एक बड़े जोशीले सज्जन थे, जो शिक्षा सम्बन्धी बढ़े-चढ़े विचार वालों से सलाह लिया करते थे, वह भारत से १९१५ के आरम्भ में ही महायुद्ध के कुछ दिनों पीछे स्विटजरलैंड चले गये और युद्ध के समय में जो कुछ उनसे हो सका, बादशाह के दुश्मनों की सहायता देते रहे, और अपने कार्यों की सफलता के लिये, मध्य एशिया में सन् १९१५ में आये, जहां वे सन् १९१७ तक रहे। तबसे उन्होंने अपना समय विशेष कर जर्मनी में ही व्यतीत किया है। जनता को कुंवर महेन्द्रप्रतापसिंह का नाम इस कारण याद है कि उन्होंने प्रेम महाविद्यालय नामक संस्था स्थापित करने के लिये बहुत-सा दान दिया है, जो कि साहित्य, शिल्प और उद्योग का स्कूल है।"

राजा महेन्द्रप्रताप ने सरकार के कथन के प्रतिवाद में "इन्डिपेन्डेन्ट" में एक लेख प्रकाशित कराया था। उसमें आपने लिखा था कि मुझे आपके पत्र में यह गलत खबर पढ़कर बड़ा ताज्जुब हुआ कि सितम्बर के महीने

में गवर्नमेंट ने लेजिस्लेटिव असेम्बली के मेम्बरों से कहा था कि मैंने महायुद्ध में गवर्नमेंट के दुश्मनों को सहायता दी थी। ब्रिटिश सरकार ने इस सम्बन्ध में जो झूठी बातें कही हैं, उनकी असलियत इस तरह है। मैं २० दिसम्बर सन् १६१४ को हिन्दुस्तान छोड़कर फ्रांस पहुंचा। वहां से स्विटजरलैंड, इटली होता हुआ जर्मनी पहुँचा। कैसर ने बड़े मान के साथ मेरा स्वागत किया। फिर मैं टर्की पहुंचा और सुलतान महमूद पांचवें से मिला टर्की के सुलतान और कैसर ने अमीर काबुल से मिलने को मुझे शाही चिट्ठियां दीं। मैं कुछ जर्मनी और तुर्क अफसरों को साथ लेकर भूपाल के मौलाना बरकतउल्ला सहित रवाना हुआ। घोड़ों और गाड़ियों पर सारा फारिस तै करके हम लोग २ अक्टूबर सन् १६१५ को काबुल पहुँचे। हमारी अफगान सरकार ने बड़ी खातिर की। मैं यहां फरवरी सन् १६१८ तक रहा। मैं यहां से रूस होता हुआ जर्मनी को रवाना हुआ। मैंने अपने हाथ से अमीर काबुल और सुलतान की चिट्ठियां जर्मनी के कैसर को दीं। मैं सन् १६१६ की बसन्त ऋतु तक यूरोप में रहा। अफगान युद्ध की खबर पाकर काबुल को रवाना हुआ। रास्ते में मैं अपने सच्चे साथी मोशिये लेनिन से मिला। रूसी मिशन को लेकर मैं काबुल पहुंचा। यहां चार महीने रहकर एक साल तक बदख्शां इत्यादि में घूमा। मुझे काबुल के अमीर अमानुल्लाखां ने चीन के प्रेसीडेण्ट, दलाईलामा तथा शाह जापान के लिये चिट्ठियां दी थीं। मैं चीनी तुर्किस्तान होकर तिब्बत जाना चाहता था। मैंने संसार का दो बार भ्रमण किया। काशगढ़ के अंग्रेज कौन्सिल जनरल ने मेरे जाने में बड़ी सख्त रुकावटें पैदा कीं। चीनी सरकार की मेहरबानी होने पर भी इस अंग्रेज अधिकारी के कारण मैं चीनी तुर्किस्तान होकर न जा सका। मैंने शाही चिट्ठियां चीन के प्रेसीडेण्ट को भेज दीं और काबुल को लौटा दीं। मैं फिर यूरोप गया और जनरल वलीमुहम्मदखां के साथ कुछ अर्से तक रहा। इसके बाद मैं फ्रांस व मैक्सिको होता हुआ गत महीनों में जापान पहुंचा। मैं यहां लगभग तीन महीने ठहरकर पेकिङ्ग जाऊंगा।

वहां से तिब्बत पहुंचूंगा। खासकर मेरा उद्देश्य धार्मिक है। लेकिन, मैंने राजनीति का बहिष्कार नहीं किया है। मैं जो कुछ भी कहता हूँ, यह सब धार्मिक और मानवता की दृष्टि से। मैं आजकल अफग़ानिस्तान का एक नागरिक हूँ।"

यह सारा विवरण और उसके बाद का घटना-क्रम भी विस्तार के साथ अगले पन्नों में दिया जा रहा है।

केन्द्रीय सरकार की शासन-सत्ता राष्ट्रीय लोगों के हाथों में आने के बाद जब कि नेता जी सुभाषचन्द्र बोस सरीखे भयानक बागी माने गये आजाद हिन्द सरकार के राष्ट्रपति और आजाद हिन्द फौज के सेनापति पर से सारे कानूनी प्रतिबन्ध हटाकर उनके विरुद्ध जारी किये गये सब हुक्म भी रद्द कर दिये गये हैं, तब आशा रखनी चाहिये कि विश्व-प्रेम के पुजारी राजा महेन्द्रप्रताप के प्रति की गई सारी आपत्तियों तथा अन्याय को भी मिटा दिया जायगा। आपकी जायदाद वापिस की जा कर उसको स्वेच्छा पूर्वक खर्च करने की आपको सुविधा दे दी जायगी।

: ६ :

स्विटजरलैण्ड से जर्मनी में

राजासाहब का जहाज भूमध्य सागर से होकर इंग्लैण्ड जा रहा था कि उसको बेतार के तार से सन्देश मिला कि वह मार्सेलीज पहुँचकर आगे बढ़ें। जैसे ही जहाज मार्सेलीज के बन्दर पर पहुँचा, वैसे ही राजासाहब अपने साथी श्री हरिश्चन्द्र के साथ स्थानीय ब्रिटिश कौंसिल के जनरल के पास पहुँचे। समुद्री मार्ग को असुरक्षित बताकर आप लोगों ने रेल से यात्रा करने और स्विटरजरलैण्ड होते हुये लन्दन जाने की अनुमति प्राप्त कर ली। राजासाहब यही चाहते थे। स्विटजरलैण्ड पहुंचकर जर्मनी के साथ सम्बन्ध कायम करना कठिन न था। आप स्विटजरलैण्ड जाने वाली गाड़ी में सवार हो गये। जनेवा में जाकर आप एक होटल में ठहर गये। उस अंग्रेज होटल का नाम एंगलीटर था। श्री हरिश्चन्द्र भी आपके साथ ठहरे।

आपको जहाज पर एक मिश्री युवक मिला और उसने आपको जनेवा का श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा का पता दिया। श्री श्यामजी कृष्ण वर्मा हिन्दुस्तानी क्रान्तिकारियों के सबसे बड़े आश्रय-स्थान थे। जनेवा पहुंचते ही राजासाहब ने उनकी खोज शुरू की और तुरन्त उनका पता लगा लिया। श्री हरिश्चन्द्र के साथ आप उनसे मिलने गये। उनसे आपको लाला हरदयाल एम० ए० का पता मिला। लाला जी शहर से बाहर दूर अकेले में रहते थे। एक भी दिन खराब करना उचित न समझकर आप उसी समय टैक्सी करके लालाजी के घर पहुँचे। लालाजी ने आपका हार्दिक स्वागत किया। लालाजी तब अपने भोजन के लिये आलू उबाल रहे थे। भोजन आदि सब कुछ भूलकर आपने राजासाहब का स्वागत किया। कैसा दृश्य वह रहा होगा?

लालाजी और राजासाहब में देर तक बातें हुईं। युद्ध की परिस्थिति, हिन्दुस्तान में क्रान्ति की सम्भावना, बाहर से हमला करने की तय्यारी और

उसके लिये आवश्यक सहायता प्राप्त करने आदि के सम्बन्ध में खूब चर्चा हुई। सारी बातचीत के बाद राजाजी ने लालाजी से सीधा सवाल किया कि आप जर्मनी क्यों नहीं जाते? लालाजी ने उत्तर दिया कि हां, कुछ युवक वहां इकट्ठे हो रहे हैं।

दूसरे दिन रात के समय लालाजी ने राजासाहब को जर्मन-राजदूत से मिलाया। यह मुलाकात बहुत चोरी चतुराई के साथ हुई। जर्मन-राजदूत ने राजाजी को जर्मनी जाने की सलाह दी और वहां की परिस्थिति को स्वयं देखने व समझने का आपसे अनुरोध किया। राजाजी ने कैसर से मिलने की इच्छा प्रगट की और पूछा कि क्या उनसे मुलाकात हो सकेगी? जर्मन राजदूत कुछ भी स्पष्ट उत्तर न दे सका। उसने कहा कि उसके लिये भी कैसर से मिल सकना संभव नहीं है।

इसी बीच श्री हरिश्चन्द्र राजा जी से अलग हो गये और संस्कृत के प्रोफेसर के चक्कर में आकर वे उनके साथ रहने लग गये। राजासाहब को बहुत दुःख हुआ कि श्री हरिश्चन्द्र ने उनका विदेश में ऐसे अवसर पर साथ छोड़ दिया। दुखी होने पर भी आप निराश नहीं हुये। जर्मन-राजदूत की बातचीत से आपको दुःख और निराशा दोनों ही हुये थे। जर्मन जाने का विचार छोड़कर आप रोम चले आये। नेपल्स से आपने अमेरिका जाने का विचार किया। राजा साहब मिलान पहुँचे ही थे कि आपको भी हरिश्चन्द्र का तार मिला कि सारी व्यवस्था हो गई है। आप तुरन्त जनेवा लौट आये। आपने रोमा से लौटने की सूचना तुरन्त तार से दे दी। मिलान से आप रोम पहुंचे। यहां आपको हिन्दुस्तान से आपका पासपोर्ट मिलने की भी सूचना थामस कुक एण्ड कम्पनी से मिल गई और पासपोर्ट भी मिल गया। युद्ध की परिस्थिति का अध्ययन करने के लिये यूरोप की यात्रा करने और यूरोप से सानफ्रांसिस्को में होने वाली प्रदर्शिनी में शामिल होने के लिये अमेरिका जाने की आपने अनुमति मांगी थी। पासपोर्ट में इसके लिये अनुमति दे दी गई थी।

कुछ ही दिन इटली ठहरकर आप तुरन्त जनेवा लौट गये। रोम जाते हुये ट्रेन में पेरिस और रोम स्थित स्थायी मिनिस्टर से आपका परिचय होगया। उसने आपको भोजन के लिये दावत भी दी। युद्ध की परिस्थिति पर भी बातचीत हुई। स्थायी मिनिस्टर का यह निश्चित मत था कि जर्मनी युद्ध में हारेगा और उसने राजा जी को जर्मनी जाने से आग्रह पूर्वक रोका। राजा जी ने भी उसको अपने होटल में भोजन के लिये दावत दी।

दुबारा स्विटजरलैण्ड में

रोम से जनेवा जाने पर आप पहिली बार श्रीमती सरोजिनी नायडू के भाई श्री हीरेन्द्रनाथ चट्टोपाध्याय से मिले। उनके साथ भी राजा जी ने युद्ध की परिस्थिति से लाभ उठाकर स्वदेश को आजाद करने के सम्बन्ध में चर्चा की। जर्मनी जाने के सम्बन्ध में अपना विचार भी आपने प्रगट कर दिया। लेकिन कैसर से मिलने की संभावना न होने पर आप जर्मनी जाने को उत्सुक न थे। श्री चट्टोपाध्याय ने आपको यह कहकर प्रोत्साहित किया कि यदि आप इतना त्याग करने और बड़े-से-बड़ा संकट झेलने को तय्यार हैं, तब कैसर आपसे क्यों न मिलेगा? आप एक बार फिर जर्मन राजदूत से भी मिले। उसको आपने अपने जर्मनी जाने के निश्चय की सूचना दे दी। लेकिन पहिली बार जर्मनी में जाने पर वह कुछ असन्तुष्ट था, फिर भी उसने आपकी यात्रा के लिये सारा प्रबन्ध कर दिया।

जर्मनी में

राजासाहब श्री चट्टोपाध्याय के साथ बर्लिन के लिये विदा हो गये। श्री हरिश्चन्द्र जनेवा में ही रुक गये। लाला हरदयाल एम० ए० पहिले ही जर्मनी के लिये विदा हो चुके थे। स्विस-जर्मन सीमा पर पासपोर्ट अफसर ने आप दोनों का पासपोर्ट मांगा। श्रीचट्टोपाध्याय जर्मन भाषा बोल सकते थे। उन्होंने उसके कान में कुछ कहा और आगे बढ़ने की अनुमति मिल गई।

राजा जी के पास का पैसा खर्च होकर जेब खाली होती जा रही थी। इस्टेट के मैनेजर को दिये गये कई तारों के बावजूद भी हिन्दुस्तान से पैसा

न आया। पैसे की तंगी के कारण बर्लिन में राजासाहब ने काण्टिनेटल होटल में एक छोटा-सा मामूली कमरा किराये पर लिया। कुछ दिनों बाद श्रीहरिश्चन्द्र जी बर्लिन पहुँचे और आपने राजासाहब को सूचना दी कि थामस कुक एण्ड कम्पनी की मारफत कुछ रुपया हिन्दुस्तान से उनके लिये आया है। किन्तु वह उनके सिवाय किसी और को नहीं मिल सकेगा। उसके लिये राजासाहब का बर्लिन से स्विटजरलैण्ड आना जरूरी हो गया। उसके लिये प्रबन्ध किया गया और आप स्विटजरलैण्ड वापिस आये। इसके लिये आपने जर्मनी से पासपोर्ट लिया। केवल सौ पौण्ड आपके लिये आया था, किन्तु डाक भी बहुत सारी आई हुई थी। इनमें झाबुआ के महाराणा, देहरादून के सेठ बलदेवसिंह और काशी के बाबू शिवप्रसाद गुप्त के भी पत्र थे। गुप्त जी उस समय अमेरिका में थे।

राजा जी के सुरक्षित जर्मनी पहुँच जाने पर आपके मित्रों को बहुत सन्तोष हुआ। उन्होंने सुख की गहरी सांस ली। उन्हें भय था कि कहीं स्विस-जर्मन सीमा को पार करते हुये कोई अनिष्टकारी घटना न घट जाय। जर्मनी में ऊंचे जर्मन अधिकारी और दूसरे लोगों ने राजा जी के सम्मान में कई दावतें दीं। जर्मनी के परराष्ट्र विभाग की ओर से बेरनफान बेसन दाफ को आपकी देख-रेख और सुख-सुविधा की व्यवस्था करने के लिये नियुक्त किया गया। कराची में रहने वाले भूतपूर्व जर्मन-राजदूत हर न्यून होफेर को भी इसी कार्य पर तैनात किया गया था। होफेर सदा ही राजासाहब के साथ रहते थे, आपके साथ ही भोजन करते और साथ ही घूमने जाया करते थे। युद्ध के सब मोर्चों पर भी राजा साहब के साथ वे गये।

पूर्वीय मोर्चे पर

पूर्वीय यूरोप के युद्ध-मोर्चे पर जब राजा साहब को ले जाया गया, तब भी हर न्यून होफेर आपके साथ गये। तुर्की पार्लमेण्ट के वाइस प्रेसिडेंट मि० अब्दुल करीम बेग भी आपके साथ गये। युद्ध के मोर्चे पर लौदज

स्थान में आप फील्ड मार्शल मैकेंजेन के मेहमान बने। फील्ड मार्शल जर्मन-सेनाओं के इस मोर्चे पर कमांडर-इन-चीफ थे। राजा साहब और मि० बेग के सम्मान में फील्ड मार्शल ने बड़ी शानदार दावत की योजना की। राजाजी को आपने अपने दांई ओर सम्मान के साथ बिठाया। अनेक विषयों पर चर्चा हुई। फील्ड मार्शल ने जब राजा जी से यह सवाल किया कि आप अपने साथ अपनी रियासत से कितने हीरे-जवाहरात लाये हैं, तब आपको बहुत दुःख, विस्मय और निराशा हुई। आपको आश्चर्य इसलिये हुआ कि जीवन-मृत्यु के युद्ध में लगे हुये राष्ट्र के प्रधान सेनापति को भी हीरे-जवाहरात का कितना लालच था। निराशा इसलिये हुई कि जर्मनों की आंखें भी सोने का अंडा देने वाली मुर्गी पर लगी हुई थीं।

आप दोनों को युद्ध के मोर्चे पर सब कुछ दिखाया गया। उन गहरी खाइयों तक भी ले जाया गया, जो सबसे आगे मोर्चे पर खोदी गई थीं। रूस की भूमि पर गोले बरसाने और आग उगलने वाली तोपों को चलते हुये भी आपने देखा। लेकिन रूस के प्रत्याक्रमण के कारण आपको वहां से तुरन्त लौट आना पड़ा। युद्ध में घायल सिपाहियों के अस्पताल में वापिस लाये जाने के दृश्य भी आपने देखे। फिर आपको हवाई जहाज में बिठाकर युद्ध भूमि का सारा दृश्य दिखाया गया। युद्ध का मोर्चा और हवाई जहाज की सवारी आपके जीवन की पहली चीजें थी। बड़े कौतुक के साथ आपने यह सब देखा।

युद्ध के मोर्चे से राजा साहब जब लौटे, तब बर्फ गिरनी शुरू हो गई थी। राजा साहब मोटर पर लौटे और जर्मनी की सीमा पर पहुँचकर बर्लिन रेल से पहुँचे।

: ७ :

कैसर से मुलाकात

राजा साहब का विचार था कि जर्मनी के चांसलर की ओर से हिन्दुस्तान के बड़े-बड़े २६ राजाओं को पत्र भेजे जांय। जर्मन-अधिकारियों से भी आपने इसकी चर्चा की थी। बर्लिन लौटने पर आपको पता चला कि वह पत्र तय्यार हो गया है। नैपाल के महाराज को भी "हिज मैजेस्टी" के सम्बोधन से पत्र लिखा गया था। उनमे कासिम बाजार के नन्दी भी एक थे। २६ राजाओं की यह सूची राजा साहब ने स्वयं ही तय्यार की थी।

इसी बीच राजा साहब की कैसर विलियम के साथ मुलाकात की व्यवस्था भी हो गई थी। जर्मनी के परराष्ट्रविभाग के उपमन्त्री हर जेमर मानराजा जी को कैसर के निवास-स्थान टियरगार्टन ले गये। राजा जी ने देखा कि भीतर जाने से पहले हर जेमरमा ने अपनी मूछों को ताव दे कर कैसर-फैशन का बना लिया। राजा जी आगे आगे चले और हरजेमरमान आपके पीछे-पीछे आये। भीतर जब पहुँचे, तो उस विशाल भवन में कैसर अकेले ही खड़े थे। आपको उन्हें पहचानने में देरी नहीं लगी, क्योंकि उनके फोटो आप कई बार देख चुके थे। कैसर आपका स्वागत करने के लिये कुछ आगे बढ़े। राजा जी ने हिन्दुस्तानी ढंग से अभिवादन किया। कैसर ने आगे बढ़कर हाथ मिलाया और दोनों हाथ मिलाकर एक दूसरे से मिले। अंग्रेजी में बातचीत हुई। कैसर जान-बूझ कर कुछ बिगाड़कर इसलिये बोलते थे कि वे उसको मातृभाषा की तरह न बोलकर विदेशी भाषा की तरह बोलना चाहते थे।

यह मुलाकात बीस मिनट तक हुई और दोनों बीस मिनट तक बराबर एक दूसरे के सामने खड़े रहे। हर जेमरमान राजा जी के बांई ओर कुछ दूरी पर खड़े रहे। कैसर मुलाकात के लिये पूरी तरह तय्यार ही थे। अपने देश के शासन और सेना-संचालन की पूरी जिम्मेवारी को निभाते हुये भी

इन्होंने हिन्दुस्तान के बारे में अच्छी जानकारी प्राप्त की हुई थी। राजा जी का पंजाब की फुलकियां रियासत के साथ जो विवाह सम्बन्ध था, उसका भी कैसर को कुछ पता था। जींद, नाभा तथा पटियाला के बारे में और अफगानिस्तान की ओर से हमला होने पर उनकी अनुकूल भौगोलिक स्थिति के बारे में भी कैसर के साथ चर्चा की। केसर ने भारत में अंग्रेजी राज्य के नष्ट होने के सम्बन्ध में निश्चित भविष्यवाणी की। राजाजी ने बातचीत की समाप्ति पर इतना ही कहा कि हां, हिन्दुस्तान में आम तौर पर यह कहा जाता है कि सौ वर्ष की हुकूमत के बाद अंग्रेजी राज का अन्त होना ही चाहिये और ये सौ वर्ष पूरे हो रहे हैं। बातचीत समाप्त करके राजाजी ने विदा ली और आप कुछ ही कदम चले होंगे कि कैसर ने लौटकर आपको सम्बोधित करते हुये कहा कि "अफगानिस्तान के अमीर को मेरी शुभ कामना पहुंचाना न भूलियेगा।" राजा जी कैसर से मिलकर बहुत प्रसन्न हुये। आप उनकी सहृदयता, सरलता और मिलनसारिता से बहुत प्रभावित हुये। जर्मनी की इम्पीरियल सरकार ने आपको दूसरे दरजे के "आई आफ दी रैड ईगल" के पद से सम्मानित किया।

राजा जी और जर्मन सरकार मे विचार-विनिमय होकर यह तय हुआ कि आपको हिन्द-तुर्की-जर्मन-मिशन पर अफगानिस्तान जाना चाहिये और हिन्दुस्तान की आजादी के लिये बनाई गई योजना के लिये वहां के अमीर की सहानुभूति प्राप्त करनी चाहिये।

पंजाब केसरी लाला लाजपतराय जी उस समय अमेरिका में थे। जर्मन सरकार ने आपको भी जर्मनी बुलाकर राजा साहब के साथ मिलाना चाहा। लाला जी जर्मनी नहीं आ सके। राजा जी के शब्दों में हिन्दुस्तान के लिये उनका जर्मनी न आ सकना बहुत ही हानिकारक सिद्ध हुआ।

: ८ :

अफगानिस्तान की ओर

हिन्द-तुर्की-जर्मन मिशन पर जाने की तय्यारियां करने में राजा साहब ने अपने को लगा दिया। इस मिशन के लिये आप पर किया गया भरोसा मामूली न था। परराष्ट्र विभाग के मन्त्री के दफ्तर में रहकर आपने सारी जानकारी प्राप्त की और अफगानिस्तान जाने का रास्ता आदि भी निश्चित किया। परराष्ट्र विभाग के बेरन फान वेसनदांफ के साथ आपने इस बारे में काफी चर्चा की। आपने जमनी और रूस के पारस्परिक सम्बन्धों की चर्चा करते हुये उनकी दोस्ती पर भी जोर डाला। लेकिन, बेरन इस पर कुछ भी न कह कर चुप रहा। राजा साहब को हिन्दुस्तान की आजादी के लिये दोनों का दोस्त बनना अनिवार्य जान पड़ता था। माननीय श्री पुरुषोत्तमदास जी टण्डन के साथ देहरादून में हुई बातचीत भी आपको याद आ गई। लेकिन इस बारे में कुछ कर सकना आपके लिये संभव न था।

आप बर्लिन से अफगानिस्तान जाने को तैयार हुये तो जर्मन चांसलर की ओर से हिन्दुस्तान के राजाओं के नाम तय्यार किये गये वे २६ पत्र चांसलर वेथवान हालवेग की ओर से आपको दे दिये गये। अपनी सरकार की ओर से एक पत्र उसने राजा जी को दिया। इस पत्र के अन्त में लिखा गया था कि "जर्मन चांसलर ने हिन्दुस्तान की आजादी का काम आपको सौंपा है और वे इसके लिये जो कुछ भी करेंगे, उसमें जर्मन सरकार की पूरी सहायता उनको प्राप्त होगी। जर्मन सरकार हिन्दुस्तान में अपना अधिकार कायम करना नहीं चाहती। वह हिन्दुस्तान के साथ केवल घनिष्ठ व्यापारी सम्बन्ध कायम करना चाहती है।

राजा साहब पूरी तय्यारी करने के बाद बर्लिन से तुर्की के रास्ते से होकर अफगानिस्तात जाने के लिये कुस्तुन्तुनिया के लिये विदा हुये।

कुस्तुन्तुनिया उस समय खिलात और तुर्की के ओटोमन साम्राज्य का केन्द्र अथवा राजधानी थी। कुस्तुन्तुनिया में राजा साहब का ओटोमन सम्राट और खलीफा ने स्वागत एवं अभिनन्दन किया। राजकीय स्वागत करने के अलावा हिन्दुस्तान की आजादी के लिये अपनी नैतिक तथा शस्त्रास्त्र की सहायता का भी राजासाहब को पूरा विश्वास दिलाया गया। खलीफा ने अफगानिस्तान के अमीर के नाम एक परिचय पत्र भी दिया। इसमें आपको सब प्रकार की सहायता देने पर भी जोर दिया गया था। वहां राजासाहब अनवर पाशा तलात पाशा से भी मिले और उनसे अनेक विषयों पर चर्चा की। दोनों देशों के पारस्परिक सम्बंधों के बारे में भी चर्चा हुई।

कुस्तुन्तुनिया से राजा साहब अपने मिशन के साथ बगदाद होते हुये ईरान के लिये विदा हुये। तुर्की से ईरान तक का रास्ता घोड़ों और घोड़ागाड़ियों आदि पर तय किया गया। वहां से ऊंची पहाड़ियों को पार करके राजा साहब अपने साथियों के साथ २ अक्टूबर १६१५ को अफगानिस्तान की राजधानी काबुल पहुँच गये। अफगानिस्तान के राजा ने आपका स्वागत किया। राजा साहब और मिशन के लोग अफगानिस्तान के राजा (अमीर) को हिन्दुस्तान पर हमला करने के लिये तय्यार करना चाहते थे।। फरवरी १६१८ —अढ़ाई वर्षों तक राजा साहब अफगानिस्तान में ही रहे।

: ६ :

काबुल में आजाद हिन्द सरकार

अफगानिस्तान में रहते हुये १६१६ के शुरू के दिनों में राजासाहब ने अस्थायी तौर पर आजाद हिन्द सरकार की स्थापना की। आपको ही इस सरकार का प्रधान या राष्ट्रपति चुना गया। मौलाना बरकतअली और मौलाना उबायदुल्ला सिन्धी उनके साथी थे। आप सब की धारणा यह थी कि अफगानिस्तान से पंजाब पर हमला करते ही आजाद हिन्द सरकार की सेनायें दिल्ली जा पहुंचेगी। एक बार एक मित्र ने काबुल में आपसे कहा कि हिन्दुस्तान के आजाद होने पर आपको जमीन के रूप में बड़ी जायदाद के अलावा और क्या मिल सकेगा? आपने तुरन्त उत्तर दिया कि "उसकी मुझे तनिक भी इच्छा नहीं है। इच्छा होती ही तो मैं अपने पास की जायदाद को क्यों तिलांजलि देता?" एक बड़े अफगान सरदार हाजी अब्दुर रजीक खां साहब ने भी आपसे पूछा कि आजाद हिन्द सरकार जब विदेशियों को आपके देश से बाहर खदेड़ देगी, तो आप क्या करेंगे? आपने सहसा उत्तर दिया कि "मैं तो सिर्फ प्रेम के धर्म का और सब धर्मों की एकता का ही प्रचार करना चाहता हूँ।"

एक बार मौलाना उबायदुल्ला सिन्धी ने कहा कि क्यों न अमीर हबीबुल्ला से यह प्रार्थना की जाय कि वे युवराज इनायतुल्लाह को हिन्दुस्तान की आजादी के आन्दोलन का नेतृत्व करने दें। राजासाहब तुरन्त इससे सहमत हो गये। आपने कहा कि "मेरी व्यक्तिगत या निजी आकांक्षा कुछ भी नहीं है। मेरी तो इतना ही इच्छा है कि यदि देश को आजाद करके आजाद हिन्द सरकार की सेनायें दिल्ली पहुंच गईं, तो कांग्रेस की बैठक बुलाकर देश के लिये शासन-विधान बनाने का काम उसको सौंपा जायगा।"

आजाद हिन्द की स्थायी सरकार की स्थापना हो जाने के बाद भी

हिन्दुस्तान को आजाद करने के लिये यह आवश्यकता थी कि अफगानिस्तान उस पर हमला करे। ऐसा हुये बिना राजासाहब के लिये अपनी योजनाओं को को पूरा कर सकना संभव ही न था। छः हजार सैनिकों की सेना खड़ी करके हिन्दुस्तान पर आपकी सरकार ने आक्रमण भी किया। इन वीरों में बहुत से लड़ाई में गोलियों के शिकार हुये, कुछ फांसियों पर लटकाये गये और कुछ जंगलों में मृत्यु के शिकार हुये। १६१६ में अफगान-युद्ध के दिनों में भी आक्रमण करने का दुबारा यत्न किया गया।

अफगानिस्तान रहते हुये राजासाहब ने पामीर की यात्रा की। इस्लाम का भी आपने गहरा अध्ययन किया। इस्लाम के संगठन और उसके अनुयायियों के बारे में भी जानकारी प्राप्त की। आपने देखा कि इस्लाम में ऐसी कोई भी बात न थी, जो उसके अनुयायियों को दूसरे धर्मों के मानने वालों के साथ प्रेम करने से रोके। इस्लाम तो शान्ति चाहने वाला धर्म है और उसका लक्ष्य संसार में शान्ति की स्थापना करना है। सार्वभौम भ्रातृभाव का भी वह उपदेश देता है।

अफगानिस्तान में वहां के राजा या अमीर के अलावा सरकार के बड़े बड़े अधिकारियों और सरदारों के साथ भी आपने परिचय प्राप्त किया। युवराज इनायतुल्लाह तो आपके बहुत ही घनिष्ठ मित्र थे। १६१८ में युवराज ने आपको अपना एक फोटो दिया था। इस पर परशियन में यह लिखा गया था कि—"अपनी दोस्ती की याद में मैं अपना यह फोटो सम्माननीय मथुरा और हाथरस के राजा माननीय महेन्द्रप्रताप को भेंट करता हूँ।"

: १० :

फिर यूरोप की यात्रा पर

रूस में

१९१८ के शुरू के दिनों में रूस के किसानों और मजूरों में हुई भीषण क्रान्ति का समाचार पाकर आप फूले न समाये। रूस की ओर पहिले ही आपकी आंखें लगी हुई थीं। आप वहां जाने को भी उत्सुक थे। वहां पर हुई क्रांति और परिवर्तनों का आप प्रत्यक्ष अनुभव प्राप्त करना चाहते थे। इस लिये मार्च १९१९ में आप रूस के लिये विदा हो गये। काबुल से चलकर आप पेट्रोग्रेड पहुँच गये। इसी का नाम लैनिनग्रेड है। तब जार सरकार की यही स्थान राजधानी था और सोवियत-क्रांति का सूत्रपात भी यहीं से हुआ था। १४ मार्च को वहां पहुँचकर आप दूसरे ही दिन ट्राटस्की से मिले। ट्राटस्की ही उस समय सोवियत-क्रांति के नेता और लाल-सेना के प्रधान सेनापति थे। नयी स्थापित की गई सोवियत-सरकार के पर राष्ट्रमन्त्री भी आप ही थे। ट्राटस्की ने आपका हार्दिक स्वागत किया और जर्मनी जाने का आपको पासपोर्ट भी दे दिया।

सोवियत-क्रांति, सोवियत-विचार-धारा और सोवियत-संगठन का भी राजा साहब ने अध्ययन किया। सोवियत-संगठन से आम जनता में जो धैर्य, साहस और दृढ़ता पैदा हुई थी, उसका आप पर बहुत गहरा असर पड़ा और आप सोचने लगे कि हिन्दुस्तान की आम जनता में ऐसी क्रांति पैदा हो कर ऐसा जीवन कब पैदा होगा और वह कब रूस की जारशाही की तरह अपनी गुलामी का बोझ उतार फेंक सकेगी? आपकी यह भी इच्छा थी कि रूस की दोस्ती हासिल की जाय और अपनी आजादी का लक्ष्य पूरा किया जाय।

जर्मनी और तुर्की में

रूस से राजा साहब जर्मनी गये। वहां आप फिर कैसर विलयम से मिले। उनके नाम का आप एक पत्र भी लाये थे।

जर्मनी से आप कुस्तुन्तुनिया गये। वहां आप फिर खलीफा से मिले। अफगानिस्तान के अमीर का एक पत्र भी आपने सुलतान को दिया।

विश्व-प्रेम और एकता का फल

यूरोप और एशिया के देशों में दौरा करते हुये सबसे पहले आपने यह अनुभव किया कि साम्राज्यवादी राष्ट्रों की आकांक्षाओं में कुछ अधिक अन्तर नहीं है। इस दृष्टि से इंग्लैण्ड और जर्मनी दोनों एक ही थैली के चट्टे-बट्टे हैं। पूर्वीय देशों के प्रति उनके रुख में कुछ भी अन्तर नहीं है। हिन्दुस्तान, चीन तथा अन्य पूर्वीय देशों के प्रति जर्मन साम्राज्यवादियों की आकांक्षायें भी कुछ अच्छी नहीं हैं। जर्मनी ही क्यों यूरोप के अन्य साम्राज्यवादी राष्ट्र भी अपने साम्राज्य की सीमा का विस्तार एशिया और अफ्रीका तक करना चाहते हैं। उसमें जो बालशेवी विचारधारा और कार्लमार्क्स का आदर्शवाद पनप रहा था। उसके बारे में अभी आपने कोई धारणा नहीं बनाई थी। आप वहां के बोलशेवी नेताओं से मिलकर सोवियत विचारधारा को समझना चाहते थे और यह जानना चाहते थे कि उनसे हिन्दुस्तान की आजादी की लड़ाई में क्या सहायता मिल सकती है? फिर भी सब देशों की राजनीतिक परिस्थिति, पारस्परिक ईर्ष्या-द्वेष और घात-प्रतिघात की चालों का बारीकी से अध्ययन करने के बाद आप इस परिणाम पर पहुंचे कि संसार में वास्तविक सुख, शान्ति और संतोष तब तक नहीं फैल सकता, जब तक कि पारस्परिक सद्भावना और स्नेह कायम न किया जाय। इसके लिये आपने विश्वव्यापी संगठन कायम करने का निश्चय किया। युद्धों तथा ऐसे अन्य संकटों के अन्त करने का आपको यही एक मात्र उपाय प्रतीत हुआ। इस संगठन में आपने

यह तय किया कि सबको समानता और एवं स्वतन्त्रता दी जाय, सबको एक-सा स्थान देकर सबका एक-सा सम्मान किया जाय और इस प्रकार पारस्परिक कलह, ईर्ष्या-द्वेष, वैमनस्य का भी अन्त किया जाय। लेकिन, यह सब पारस्परिक स्नेह के बिना होना संभव न था। इसी स्नेह के सम्पादन के लिये आपका ध्यान विश्व-प्रेम और सब धर्मों की एकता की ओर गया। सब धर्मों की एकता के लिये ही आप प्रेम-धर्म के पुजारी या उपासक बन गये। १६१८ में आपने हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट में विश्व-प्रेम और सब धर्मों की एकता के केन्द्र की स्थापना की।

जर्मनी और रूस से अफगानिस्तान को

बुडापेस्ट के केन्द्र में आप अधिक दिन न रह सके और वहां से प्रेम-धर्म का निरन्तर प्रचार न कर सके। यूरोप में महायुद्ध की प्रतिक्रिया के रूप में शान्ति का आग जहां-तहां धधक रही थी। राजासाहब ने स्विटजरलैण्ड जाने का निश्चय किया। यहां पहुंचते ही आपको अफगानिस्तान में भी उलट फेर होने का समाचार मिला। आपको पता चला कि अमीर की हत्या कर दी गई है और तीसरे पुत्र अमीर अमानुल्लाखां को गद्दी पर बिठाया गया है। आप वहां से तुरन्त जर्मनी चले आये। यहां आने पर आपको पता चला कि अफगानिस्तान ने इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा कर दी है। राजा साहब को अपनी योजना को कार्य रूप में परिणत करने के लिये यह समय बहुत उपयुक्त प्रतीत हुआ। इसलिये आप सहसा अफगानिस्तान चल दिये। रूस होते हुये अफगानिस्तान जाना आसान था। मास्को में आपने लेनिन से मुलाकात की। एशियाई देशों और उनके आजादी के आंदोलनों के बारे में आपकी उनसे खूब चर्चा हुई। 'विश्व-संघ' के सम्बन्ध में भी चर्चा हुई। लेनिन ने बातचीत में कहा कि राजा साहब की धैर्य और ईश्वर के सम्बन्ध में जो कल्पना है, वह टालस्टाय की कल्पना से भिन्न नहीं है।

मास्को में आप सोवियत सरकार के मेहमान थे और सरकार के अतिथि गृह में ठहराये गये थे। राजा साहब के पुराने साथी मौलाना बरकत-उल्लाह और तातार प्रदेश के विद्वान् मौलाना यूसा जाल्लरुह भी वहां ही ठहरे हुये थे। ये बाद मे सोवियत के विरोधी बन गये थे।

सोवियत-सरकार के परराष्ट्रविभाग के अधिकारियों के साथ भी आपकी चर्चा हुई। उनमें से एक एम० सुर्कमैनाफ थे। उनसे बातचीत करते हुये राजा साहब ने ब्रिटिश साम्राज्य की सत्ता को उखाड़ फेंकने और भारत को आजाद करने की योजनाओं की भी चर्चा की। उन्होंने सहानुभूति प्रगट करते हुये कहा कि सोवियत रूस इंग्लैण्ड साम्राज्य की सत्ता सब स्थानों से नष्ट कर देगा।

मास्को से आप अफगानिस्तान के लिये विदा हुये। रास्ता पार करने में अपेक्षा से कहीं अधिक समय लग गया। कारण यह था कि सोवियत-क्रान्ति का कार्य अभी पूरा न हुआ था। अनेक स्थानों पर सोवियत के समर्थकों और विरोधियों में संघर्ष चल रहा था और रास्ता काफी दुर्गम बन गया था। १६१६ की १२ दिसम्बर को आप अफगानिस्तान पहुंचे। तब तक पहला अफगान-युद्ध समाप्त हो चुका था और इंग्लैण्ड ने अफगानिस्तान की स्वतन्त्रता सार्वभौम सत्ता को स्वीकार कर लिया था।

राजा साहब अफगानिस्तान के नये बादशाह अमीर आमानुल्ला के सुपरिचित ही नहीं, किन्तु गहरे दोस्त भी थे। अफगानिस्तान पहुँचने पर नये शाह ने आपका हार्दिक स्वागत किया और आपके साथ बहुत ही सहृदयता पूर्ण व्यवहार किया। बादशाह ने आपको चीन, तिब्बत, जापान आदि पूर्वीय देशों में अफगानिस्तान के कूटनीतिक मिशन पर जाने और उनसे गहरे संबन्ध कायम करने का अनुरोध किया। आपने यह काम सहर्ष स्वीकार कर लिया। आपके साथ जनरल (तब आप कर्नल ही थे) अबुल करीमखाँ बरसाक को भी भेजा गया। आप दोनों दो वर्ष तक इकट्ठे रहे और पामीर के पार के देशों का आप दोनों ने सुविस्तृत दौरा किया।

राजा साहब अपने इस मिशन पर जब काशगढ़ पहुंचे, तब वहां के अंग्रेज राजदूत ने आपके मार्ग में पग पग पर अड़चनें पैदा कीं। आप पर उसने यह आरोप लगाया कि अफगानिस्तान ने इंग्लैंड के विरुद्ध जो युद्ध घोषणा की थी, उसमें आपका ही हाथ था। स्थानीय चीनी अधिकारियों की आपके साथ बहुत गहरी सहानुभूति थी। लेकिन वे अंग्रेज राजदूत से डरते थे और कुछ कर सकने का उनको साहस नहीं होता था। आगे बढ़ने में कठिनाई देखकर आप सीमास्थित चीनी अधिकारियों से मिले और उनको आपने अफगानिस्तान के बादशाह का चीन के राष्ट्रपति के नाम दिया हुआ पत्र दिखाया और वहां से अफगानिस्तान लौट आये।

काबुल आकर आप फिर अफगानिस्तान के बादशाह से मिले। यह १९२० की घटना है। बादशाह ने फिर आपसे अफगान-मिशन के साथ पूर्वीय देशों में जाने का अनुरोध किया। अपना एक फोटो आपको देते हुये उस पर बादशाह ने अपने हाथों से परशियन में यह लिखा कि "अपने सम्माननीय मित्र और मेहमान राजा महेन्द्रप्रताप को मैं यह भेंट करता हूँ।"

१९२० में आप फिर पामीर के पार देशों की यात्रा पर रवाना हो गये। कर्नल अब्दुल करीम खां आपके साथ थे। घोड़ों पर आप दोनों रवाना हुये और रास्ते में बहुत कठिनाइयों का सामना करना पड़ा। चीन की सीमा पर पहुँचते ही अंग्रेज अधिकारियों ने आपका पीछा करना शुरू किया। आपको जीवित अथवा मृत अवस्था में ही क्यों न हो, गिरफ्तार करने के लिये एक पूरी बटालियन भेजी गई। अन्तर्राष्ट्रीय कानूनों की मर्यादा की कुछ भी परवा न कर अंग्रेज बटालियन दूर तक चीन में घुस गई। चीनी अधिकारियों ने इसका भेद आप तक पहुँचा कर आपको सावधान कर दिया। सावधान कर दिये जाने पर भी आपको संकट का सामना करना पड़ गया। आप सहसा अंग्रेज बटालियन के हाथों में पड़ गये होते लेकिन एक रूसी बटालियन भी पामीर होकर ताशकन्द जा रही थी। आप उसके पास पहुँच गये और आपने अपने लिये पैदा हुई नाजुक तथा संकटापन्न स्थिति

का उसको पता दिया । अंग्रेज बटालियन के हाथों से शिकार निकल गया और उसको निराश बैरंग लौट जाना पड़ा । सोवियत बटालियन का वह मुकाबला न कर सकी ।

इस संकट से पार होकर आप अपने दलबल के साथ घोड़ों पर सवार होकर अलाई होकर रूसी रेलवे के ओश स्टेशन पर पहुँच गये । वहां से पामीर होकर आपको फिर अफगानिस्तान लौट आना पड़ा । पामीर पहुंचने पर आपको पता चला कि आपको सौंपे गये मिशन को जनरल वलीखां ने सफलता के साथ सम्पन्न कर दिया है। इसलिये इस निमित्त से आपको अफगानिस्तान जाना व्यर्थ प्रतीत हुआ और आप वहां से यूरोप की ओर चल दिये ।

११

महाद्वीपों के आर-पार

यूरोप जाने पर राजा साहब अधिकतर हंगरी में रहते थे। हंगरी की राजधानी बुडापेस्ट में आपका विश्व-प्रेम और धार्मिक एकता के संघ का केन्द्र कायम था। इसी केन्द्र में प्रायः रहा करते थे। १६२२ में कुछ कारणों से आप स्विटजरलैण्ड से जनेवा में चले आये। जनरल मुहम्मद वलीखाँ तब आपके साथ ही थे। वहाँ से आप दोनों इटली की राजधानी रोम में आ गये। दोनों में अनेक विषयों पर खूब गहरी चर्चा होती और अपने-अपने देश के वर्तमान तथा भविष्य के बारे में दोनों बहुत अधिक चिन्तित रहते। चर्चा का विषय होता था राजा साहब की विश्व-संघ की कल्पना। एक दिन अफगान जनरल ने कहा कि कुछ चमत्कार करके दिखाओ, जिससे लोग आप पर अचम्भा करने लग जांय। राजा साहब ने बड़ी चतुराई के साथ उत्तर देते हुये कहा कि अरबी भाषा में एक दन्तकथा चली आती है कि जब भी कभी पैगम्बर साहब से कुछ चमत्कार दिखाने को कहा जाता था, तो वे साफ इनकार कर देते थे और कहा करते थे कि कुरान शरीफ से बड़ा चमत्कार और क्या हो सकता है ! आपने कहा कि मैं कुछ भी चमत्कार करके दिखा नहीं सकता और तो और एक हवाई जहाज तक तो चला नहीं सकता। मैं तो इतना ही कह सकता हूं कि मेरी विश्व-संघ की योजना के कार्यरूप में परिणत होने पर ही संसार में सुख, शान्ति और सन्तोष कायम होना संभव है। सब धर्मों की एकता और प्रेमभाव से पैदा हुई सद्भावना के बिना संसार में न तो शान्ति और सुख कायम हो सकता है और न भविष्य में ही उसको सन्तोष मिल सकेगा। इस समय भिन्न-भिन्न देशों, जातियों, धर्मों सम्प्रदायों तथा वर्गों के लोगों में जो संघर्ष मचा हुआ है वह ठीक दिशा में जाने का निरीक्षण हुये बिना दूर न होगा।

रोम से कुछ दिनों बाद आप फिर हंगरी लौट आये। बुडापेस्ट पहुंचते ही आप फिर किसी कूट मिशन में लग गये। हंगरी से आपने पासपोर्ट प्राप्त कर लिया। बुडापेस्ट से आप मास्को आगये। यहां सोवियत सम्मेलन के वार्षिक समारोह मे शामिल हुये। मास्को में कुछ दिन एकान्त में शांति से बिताने के बाद आप १६२३ के शुरू में जापान पहुँच गये। यद्यपि जापान में आप अधिक दिन नहीं ठहर सके, फिर भी आपने अनेक लोगों के साथ वहां गहरी दोस्ती गांठ ली। उनमें काउण्ट सकाई भी एक थे। इनका जापान के राजकीय परिवार के साथ सम्बंध था। ये बहुत प्रभावशाली राजनीतिज्ञ और व्यापारी थे। दोनों में इतना गहरी दोस्ती होगई कि काउण्ट सकाई को आपने अपना खजान्चा बना लिया। उसके पास आपने अपना रुपया-पैसा ही जमा नहीं किया, किन्तु बहुत से गुप्त पत्र तथा कागजात भी रख दिये। इनको आप साथ-साथ लिये हुये घूमा करते थे। १६१८ में जर्मनी के चांसलर ने जो कागजात और हिन्दुस्तान के राजाओं के नाम पत्र दिये थे, वे भी इनमें थे। परिस्थितियों से लाचार होकर इनको हिंदुस्तान भेजा न जा सका और आपने भविष्य में इनसे काम लेने के लिये इनको संभाल कर रख लिया था। अफगानिस्तान के स्वर्गीय बादशाह अमीर हबीबुल्लाखाँ के हाथ का लिखा हुआ एक पत्र भी इनमें था। राजा साहब का विचार इन सब कागजों को कभी स्वतंत्र हिंदुस्तान के राष्ट्रीय संग्रहालय मे रखने का था। लेकिन, उस स्वर्णीय दिवस की प्रतीक्षा में उनको लिये फिरना सम्भव न था। अपने जापानी दोस्त के यहाँ उनको इसी विचारसे सुरक्षित रखा गया था।

जापान में रहते हुये आपने यह अनुभव किया कि जापान एक उठता हुआ शक्तिशाली राष्ट्र है। आपने यह भी अनुभव किया कि चीन के उत्थान एवं उत्कर्ष को कुचलने के लिये अंग्रेज कूटनीतिक भीतर ही भीतर जापान को उकसा रहे हैं और चीनी प्रजातन्त्र का पनपना उनको असह्य हो रहा है। वे जापान को रूस के साथ भिड़ाकर वहां हुई सोवियत-क्रांति को भी नष्ट-भ्रष्ट कर देना चाहते हैं। आपने इन सब बातों की जापान के

राजनीतिक नेताओं के साथ चर्चा की। उनमें से अधिकांश आपके साथ सहमत भी थे। लेकिन, शासन की सत्ता जिनके हाथों में थी, वे सब साम्राज्य-वादी अंग्रेजों के प्रभाव में थे और उनके सामने जापानी साम्राज्य की महत्वाकांक्षा नाच रही थी।

आपके अनेक मित्रों ने आपसे जापान में रहकर एक केन्द्र कायम करने, शान्ति-सेना का संगठन करने, विश्व-प्रेम के सन्देश का वहां से प्रचार करने और संघर्ष में लगे हुये लोगों को युद्ध से हटाकर शांति के मार्ग पर लाने के लिये प्रयत्न करने का अनुरोध किया। उस समय आप उनके अनुरोध को पूरा न कर सके। लेकिन कुछ वर्षों के बाद आप फिर जापान आ गये और आपने विश्व-संघ का केन्द्र भी वहां कायम कर दिया।

१९२३ में आप चीन चले आये। यहां आपका एक कीमती थैला खो गया। इसमें बहुत कीमती और महत्वपूर्ण कागज-पत्र थे। आपने उसके बाद ऐसा वेश और कोट बना लिया, जिससे अलग थैला रखने की जरूरत न रही और उसकी बड़ी-बड़ी जेबों में आप सारे कागज संभालकर रखने लग गये।

१९२३ के अंतिम दिनों में आप पेकिंग से मास्को चले गये। इस बार आप फिर सोवियत-क्रांति के वार्षिक उत्सव में शामिल हुये। मास्को से आप अफगानिस्तान आ गये। काबुल में राजा अमानुल्लाह ने आपका स्वागत किया और आप अफगान-सरकार के मेहमान बनकर वहां रहे। १९२५ तक आप काबुल में रहे। इस अरसे में आपने अफगान-सरकार का बहुत-सा काम किया। आपको इन दिनों की और पहिले दिनों की भी सेवा देने के प्रति सम्मान प्रगट करने और हिन्दुस्तान के प्रति अफगानिस्तान की सद्भावना का परिचय देकर दोनों के पारस्परिक सम्बन्धों को दृढ़ करने के लिये बादशाह अमानुल्लाह ने दस हजार रुपये भेंट किये।

जनरल सरदार नादिरखां, उस समय अफगानिस्तान के कमाण्डर-इन-चीफ थे। बच्चा सक्का द्वारा किये गये विद्रोह को दबाने के बाद नादिर-

खां अफगानिस्तान के बादशाह बने थे। इनके साथ भी आपकी बहुत गहरी दोस्ती थी। १६२४ में जनरल नादिरखां के भाई जनरल शाह वलीखां ने आपको एक फोटो भेंट किया था, जिसमें जनरल नादिरखां बीच में खड़े थे और उनके दोनों भाई जनरल शाह मुहम्मद तथा जनरल वलीखां उनके दोनों ओर खड़े थे। जनरल शाह मुहम्मद बाद में युद्ध-मन्त्री बनाये गये थे। इस पर परशियन में लिखा था "कि अपने सुप्रतिष्ठित और सम्मानास्पद स्नेही मित्र राजा महेन्द्रप्रताप को यह समर्पित है।"

अफगानिस्तान में आप आम अफगान लोगों से भी खूब मिलते-जुलते थे। आपने अपने अनुभव और अध्ययन के बाद अफगानों के सम्बन्ध में यह राय कायम की थी कि "लोगों ने अफगानों के बारे में कितनी गलत धारणायें बना ली हैं। लोग यह समझते हैं कि वे भयानक, लड़ाके और क्रूर लोग हैं। यह धारणा पक्षपातपूर्ण है। सच तो यह है कि अफगानो का हृदय बच्चों का-सा होता है, किन्तु वे अपने निश्चय पर चट्टान की तरह दृढ़ होते हैं। मिलने-जुलने में वे अत्यन्त सरल, सादे और सहृदय होते हैं। मेरे मानव-प्रेम पर आश्रित धर्म की बातों को उन्होंने बहुत ध्यान के साथ सुना और उनको बहुत अधिक पसंद भी किया। अनेकों ने मेरे इस सन्देश को स्वीकार करके उसे अपना लिया है।" आपकी यह सम्मति आज भी काफी महत्व रखती है। इस देश के हिन्दू और मुसलमान भी यदि इस प्रकार एक दूसरे का सही चित्र देख सकें, तो इतनी जटिल और विकट दीख पड़ने वाली साम्प्रदायिक समस्या कितनी आसानी के साथ हल हो जाय।

१६२५ में आप फिर यूरोप की यात्रा पर निकल पड़े। आपने अपने विश्व-प्रेम के धर्म को फैलाने का निश्चय कर घर-घर में उसका सन्देश फैलाना शुरू किया। जहां जाते, वहां इसी का उपदेश करते। क्रांतिकारी के रूप में स्वदेश से विदा होते हुये भी आपने गौतम बुद्ध की तरह ही घर-बार के मोह का परित्याग किया था। अब आप गौतम बुद्ध के रंग में पूरी तरह रँग गये और उनके ही समान सारे संसार को विश्व-प्रेम के रंग में रँग

देने का आपने निश्चय कर लिया । इसी उद्देश्य से आपने यूरोप की यह यात्रा की ।

१६२६ में आप स्विटजरलैण्ड में थे। जनेवा में पं० जवाहरलाल नेहरू से उनकी मुलाकात हुई। पण्डित जी ने इस मुलाकात की चर्चा अपनी पुस्तक 'मेरी कहानी' में की है। मान्ट्रियल में यह मुलाकात हुई थी। आपका वेश-भूषा और रहन-सहन पण्डित जी को बिलकुल जंचा नहीं। इसी लिये पण्डित जी ने 'मेरी कहानी' में लिखा है कि "उनको देखते ही मैं भारी अचम्भे में पड़ गया। उनका वेश-भूषा कुछ ऐसा था, जो तिब्बत या साइबेरिया में तो जंच सकता था, किन्तु माण्ट्रियल में गरमी के दिनों में वह बिलकुल भी जँचा नहीं। लम्बे रूसी जूतों के साथ ऐसा जान पड़ता था, जैसे कि वह रूसी सैनिक के वेश-भूषा की जैसी-तैसी नकल थी। "पण्डित जी ने यह भी लिखा कि राजा साहब हवाई महलों में विचरने वाले हैं। राजा जी को जब पण्डित जी के इन विचारों का कई वर्षों के बाद पता चला, तब आपने मजाक में कहा कि शुक्र है खुदा का कि मैं किसी सुमुद्र की तह मे बनाये गये महलों में न रहता था। दोनों की यह मुलाकात काफी दिलचस्प रही होगी।

अमेरिका को

स्विटजरलैण्ड से आप अमेरिका के लिये रवाना हुये। मौलाना बरकत उल्लाह आपके साथ थे। अमेरिका का आपने बहुत विशाल और व्यापक दौरा किया। स्थान-स्थान पर आपने विश्व-प्रेम, सब धर्मों की एकता और विश्व-संघ के सम्बंध में अनेकों भाषण दिये। इसी सम्बध में वहां की पत्र पत्रिकाओं में बहुत से लेख भी लिखे। सानफ्रांसिस्को के 'एशियाटिक रिव्यू' में भी आपका एक लेख प्रकाशित हुआ था। अपने सम्बंध में भी आप इन लेखों में चर्चा किया करते थे। एक लेख में एक स्थान पर आपने लिखा था कि "मैं अब भिक्षु की तरह प्रेम के गीता गाता फिर रहा हूँ और ये ही गीत गाने के लिये अमेरिका आया हूँ।"..."मेरे विचार से सारा संसार एक बड़ा परिवार

है और सब देश उसी के अंग-प्रत्यंग हैं। तो यह सम्भव नहीं कि सब मिल-कर एक विशाल और संयुक्त परिवार बनावें। क्या हम प्रेम को अपनाकर शान्ति का आह्वान नहीं कर सकते ? अनेक राजनीतिज्ञ मुझे स्वप्नों की दुनिया में विचरने वाला बताते हैं। लेकिन जब देश-विदेशों की यात्रा करते हुये मैं करोड़ों आंखों को अपनी ओर आशाभरी दृष्टि लगाये हुए देखता हूँ, तब मैं उनको ऐसा कहते अनुभव करता हूँ कि हे महेन्द्रप्रताप ! तुम्हारा मार्ग बिलकुल सही और दुरुस्त है।......"मैंने अपना नाम तक बदलकर 'पीटर-पीर-प्रताप' रख लिया है जिससे कि मेरे जन्म का नाम मेरे सब धर्मों की एकता के मार्ग में कहीं बाधक न बन जाय।"

आपके साथी मौलाना बरकतउल्लाह का सानफ्रासिस्को में देहान्त हो गया। राजा साहब के हृदय पर इससे बड़ा आघात लगा।

अमेरिका में आप हिन्दुस्तान के एक नामी लेखक और पत्रकार डाक्टर सैय्यद हुसैन से भी मिले। जिन स्थानों में हिन्दुस्तानी विशेषतः सिख अधिक संख्या में रहते थे, उनमें आप विशेष रूप से गये। अपने मिशन और संघ के लिये अमेरिका की यात्रा में आपने बारह हजार डालर इकट्ठे किये। दुबारा १९३४ में भी आपने अमेरिका की यात्रा की थी।

: १२ :

फिर एशिया में

अमेरिका से कुछ सिख साथियों के साथ आप एशिया के लिये विदा हुये और १६२७ के शुरू दिनों में शांघाई पहुंच गये। इस बार आपका विचार तिब्बत हो कर हिन्दुस्तान जाने का था। एक बार पहले भी बादशाह अमानुल्लाह की सहायता से उनके प्रतिनिधि बनकर आपने अफगानिस्तान से तिब्बत पहुंचने का यत्न किया था। उस समय अंग्रेजों के कारण आप अपने प्रयत्न में सफल न हो सके थे। इस बार आप किसी प्रकार तिब्बत पहुंच ही गये। दलाई लामा ने वहां पहुंचने पर आपका हार्दिक स्वागत किया और आपको एक बढ़िया डिबिया भेंट की। आपको तिब्बत पहुंचने पर बहुत प्रसन्नता हुई, क्योंकि इस रास्ते से तिब्बत होकर हिन्दुस्तान जाने वाले आप पहले ही व्यक्ति थे।

चीन में

हिन्दुस्तान जाने का स्वप्न इस बार भी पूरा न हुआ। १६२७ के अन्त में आपने चीन जाने का निर्णय किया और नानकिंग के लिये विदा हो गये। पनपते हुये चीनी प्रजातन्त्र की तब नानकिंग राजधानी थी। प्रजातन्त्र के अफसरों व अधिकारियों ने आपका स्वागत किया और आपको बतौर सरकारी मेहमान के सम्मान के साथ ठहराया गया। नानकिंग में भी आपने 'विश्व-संघ' का केन्द्र कायम किया और अपने मिशन का तत्परता के साथ प्रचार शुरू किया। एक शक्ति-सेना का भी आपने सूत्रपात किया अनेक हिन्दुस्तानी और चीनी उसमें शामिल हुये। आपने अनेक स्थानों पर भाषण भी दिये। आप हैंको भी गये। यहां मार्शल केंग यू श्यांग ने आपको एक बड़े सम्मेलन में शामिल होने का निमन्त्रण दिया। १६२८ के शुरू में आपको एक स्पेशल ट्रेन से उसके लिये वाईफंग ले जाया गया। वहां आपको सरकार

ने अपना मेहमान बनाकर ठहराया। सम्मेलन बहुत सफलता के साथ हुआ। सब सरकारी अधिकारी उसमें उपस्थित थे। मार्शल श्यांग की सरकार के परराष्ट्र मन्त्री ने राजा जी के भाषण का चीनी में उलथा किया। राजा जी तुमुल करतलध्वनि में बोलने खड़े हुये। आपने कांग्रेस की आधीनता में चलने वाले भारतीय आजादी के आन्दोलन और अफगानिस्तान के लोगों की चर्चा करते हुये बताया कि इन देशों के लोगों की सहानुभूति ससार के सभी दीन-हीन लोगों के साथ है। अन्त में आपने विश्व-प्रेम और विश्व-संघ का सन्देश देते हुये अपने मिशन पर प्रकाश डाला। सारे संसार के लोगो के सुख और शान्ति के लिये आपने एशियाई देशों की एकता को अनिवार्य बताया।

सम्मेलन के बाद राजासाहब ने मार्शल फंग से विदा ली और अपने सिख मित्रों के साथ हैंको लौट आये। उन दिनों चीन में यात्रा करना आग में से गुजरना था, क्योंकि सारे चीन में गृह-कलह की आग सुलग रही थी। इसके बारे में राजासाहब ने एक बार कहीं कहा भी था कि "कितनी भयानक वह यात्रा थी। चारों ओर युद्ध की-सी स्थिति थी। गाड़ियों में भीड़ का ठिकाना न था। वे धीरे-धीरे चलतीं थीं। वहां से लौट आना नया जीवन प्राप्त करना था।"

नानकिंग लौटते ही आपको समाचार मिला कि काईफैंग में रहने वाले लगभग २०–३० हिन्दुस्तानियों को मार्शल श्यांग के हुक्म से वहां से निर्वासित कर दिया गया है। वहां से हैंको आने वाले सारे हिन्दुस्तानी इसके लिये राजासाहब को दोषी ठहरा रहे थे। इससे आपको बहुत दुःख हुआ। आपने तुरन्त टेलीफोन पर मार्शल से बातचीत की। आपको पता चला कि मार्शल ने उनको इसलिये निर्वासित किया था कि उन पर उसका विश्वास न था, वे राजा साहब के अनुयायी न थे और उनका रहन-सहन राजासाहब के आदर्श के अनुकूल न था। अपने सेवा के प्रति जो लोग सच्चे और ईमानदार न थे, उनको मार्शल ने काईफंग से निर्वासित किया था। इस

अवस्था में राजासाहब क्या करते? आपको भी अपने देशवासियों के इस व्यवहार के लिये लज्जा अनुभव हुई। कुछ दिनों के बाद उन हिन्दुस्तानियों में से एक ने सारा भेद खोल दिया और बताया कि किस प्रकार अंग्रेजों के दूतों ने उनको उल्लू बनाकर अपना स्वार्थ पूरा करना चाहा था। उसने अपने इस कार्य के लिये खेद प्रगट करते हुये माफी मांगी और राजासाहब की शान्ति-सेना में वह भरती हो गया।

नानकिंग में बतौर सरकारी मेहमान के ठहरे हुये होने पर भी आपने "ईस्टर्न ऑप्रैस्ड पीपल्स एसोसियेशन" के कामों में भाग लिया और कुछ लेख भी लिथो पर छापकर प्रकाशित किये।

जापान में

आपको कुछ मित्रों ने नानकिंग से जापान आने का निमन्त्रण दिया। नानकिंग में आपके गहरे दोस्तों में चीनी मुसलमानों के नेता जनरल या भी थे। वे आपके सब कामों में बहुत दिलचस्पी लेते थे। जब उनको पता चला कि आप जापान जा रहे हैं। तब उन्होंने आपको जापान जाने के खर्च के लिये कुछ भेंट देनी चाही। यद्यपि आप ऐसी भेंट कभी भी किसी से भी स्वीकार न करते थे; किन्तु अन्तरंग मित्र का आग्रह तथा अनुरोध आप टाल न सके। फरवरी १६२८ में आप नानकिंग से जापान के लिये चल दिये। "ईस्टर्न ऑप्रैस्ड पीपल्स एसोसियेशन" का एक चीनी क्लर्क आपका साथी था। शांघाई से बचने के लिये आपने हैंचाऊ तक ट्रेन में सफर किया। अंग्रेजों के गुप्तचरों और चीनी गृह-कलह के कारण भी उधर का रास्ता काफी संकटापन्न था। चीनी साथी को हैंचाऊ में छोड़कर आप अकेले ही वहां से सिंगताओ के लिये चल दिये। यहां से आप जहाज से जापान के लिये विदा हुये।

जापान पहुंचने पर जापानी नेताओं ने आपका हार्दिक स्वागत किया। बाद में जापानी पार्लमेण्ट के सदस्य चुने गये श्री नाकातानी भी आपका स्वागत करने आये थे। ये 'पान एशिया' आन्दोलन के नेता थे। जापान

के सारे दौरे में ये आपके साथ रहे और आपके भाषणों का जापानी में उल्था करते रहे। जहां भी राजा साहब गये, वहां आपका राजसी स्वागत हुआ और सभी सरकारी अधिकारी उसमें शामिल हुये। अपने भाषणों में आप हिन्दुस्तान, अफगानिस्तान, चीन, आदि देशों और एशियाई जातियों की विशेष रूप से चर्चा करते थे। जापान और चीन की मैत्री पर भी आप जोर देते और कहते कि एशिया के दीन, हीन एवं पराधीन लोगों की स्वतन्त्रता और उत्कर्ष के लिये यह अत्यन्त आवश्यक है। विश्व-प्रेम और विश्व-संघ का सन्देश भी आप सुनाते। जापानी समाचार पत्रों में आपकी यात्रा और भाषणों के समाचारों को विशेष स्थान मिलने लगा। जापानी भाषा के दैनिक "निपन" ने १८ फरवरी १९२८ का अङ्क मानो आपके लिये विशेषाङ्क के रूप में ही प्रकाशित किया था। आपके फोटो के साथ उसने कई कालम आपके बारे में दिये। अंग्रेजी भषा के दैनिक "ओसाका मैनिचि ने भी १३ अप्रैल के अङ्क में अपने पहले पृष्ठ पर मोटे अक्षरों में यह समाचार प्रकाशित किया था कि "अफगान देशभक्त श्री महेन्द्रप्रताप कोबे से प्रस्थान करने से पहले 'ओसाका मैनिचि' के दफ्तर में १२ अप्रैल को दिन में डेढ़ बजे पधारे थे। आपने चीन-जापान की दोस्ती के सम्बन्ध में अपने विचार प्रगट किये। १३ अप्रैल को कोबे से चीन के लिये प्रस्थान करने से पहिले आपको हार्दिक विदाई और भोज दिया जायगा।"

विदाई से ठीक पहले मि० नाकातानी ने आपको दो हजार येन की थैली भेंट की। आपने अचरज प्रगट किया और उसको स्वीकार करने से धन्यवादपूर्वक इन्कार कर दिया। लेकिन यह कहने पर कि उसको लेने से इनकार करना मि० नाकातानी के लिये अपमानास्पद होगा, आपको उसे स्वीकार करने को लाचार होना पड़ गया।

वापिस चीन में

जापान से अप्रैल १९२८ में चलकर आप पैकिंग आ गये। आप नानकिंग जाना चाहते थे। इसलिये तुरन्त वहां के लिये रवाना हो गये।

शान्तुंग प्रान्त की राजधानी सिनान के रास्ते से आपने जाने का निश्चय किया। वहां पहुंचने पर आपने देखा कि शहर जापान और चीन के बीच में होने वाली लड़ाई का अखाड़ा बना हुआ था। उस समय युद्ध शहर के दक्षिण भाग में हो रहा था, जिस पर जापानी अपना अधिकार कर चुके थे। राजा जी के लिये शहर को पार करके आगे बढ़ना कठिन हो गया। इसलिये आपको एक छोटे से होटल में रहने को बाध्य होना पड़ा। इसी बीच में चीनी सेनाओं ने शहर के एक हिस्से पर हमला कर दिया। जापानियों ने प्रत्या-क्रमण करके चीनियों को पीछे धकेल दिया। राजा जी ने युद्ध का दृश्य अपनी आंखों से देखा और गोलाबारी होती हुई भी देखी, जो आपके निवास-स्थान से अधिक दूर नहीं थी।

सिलान से आप जर्मन जहाज पर सवार होकर सिंगलाओ चल दिये। यह जहाज चुंग जा रहा था। उससे आप नानकिंग पहुँच गये। नानकिंग में पहले तो आप सरकार के मेहमान बनकर रहे; किन्तु कुछ ही दिनों में "ईस्टर्न ओप्रैस्ड पीपल्स एसोसियेशन" के दफ्तर में चले गये। आपके मित्र श्री गेण्डासिंह ने आपकी सुख-सुविधा की सारी व्यवस्था की और आपको घर का-सा सुख पहुँचाने का पूरा यत्न किया। सम्मेलन के चीनी सेक्रेटरी मि० सी० कुआंग सदा ही आपके साथ रहते और जब भी आप किसी चीनी से मिलने के लिये जाते, तो वे आपके साथ जाते। आपके व्याख्यानों का चीनी भाषा में उलथा करने का काम भी आप ही करते थे।

यहां राजासाहब ने लिथोग्राफी में एक सरक्यूलर निकालना शुरू किया। इसमें आप अपनी जापान की यात्रा का विस्तृत ब्यौरा दिया करते थे। "ईस्टर्न ओप्रैस्ड पीपल्स एसोसियेशन" की ओर से आपने अंग्रेजी में एक पाक्षिक बुलेटिन भी प्रकाशित करना शुरू किया। १५ जून १६२८ को इसका पहला अङ्क निकाला गया। १ अगस्त के बाद इसका प्रकाशन बन्द हो गया। जनरल लो ल्यू से हुई उनकी मुलाकात का विवरण १५ जुलाई के बुलेटिन में प्रकाशित हुआ था। जनरल लो अत्यन्त प्रभावशाली चीनी

नेता थे। राजासाहब के विश्व-प्रेम और विश्व-संघ के कार्य के प्रति हार्दिक सहानुभूति प्रगट करते हुये आपने उसके लिये आपको एक हजार डालर भेंट किये। पहली अगस्त के बुलेटिन में राजासाहब को कांग्रेस के प्रधान मन्त्री के नाते पण्डित जवाहरलाल जी नेहरू का लिखा हुआ एक पत्र भी प्रकाशित हुआ था। सम्भवतः अंग्रेजों से सहायता प्राप्त करने वाले और उकसाये हुये कुछ लोगों ने राजासाहब को बदनाम करने के लिये कुछ पर्चे प्रकाशित किये थे। इनमें आपको कम्युनिस्टों का एजेण्ट बताया गया था। शांघाई के "चाइनो प्रेस" समाचार पत्र में आपको अफगान कम्युनिस्ट बताकर बदनाम करने की कोशिश की गई। राजा जी को यह सब बहुत बुरा लगा और आपने नानकिंग से "चाइना प्रेस" को २६ मई १६२८ को एक पत्र भेजा, जो उसके पहली जून के अङ्क में प्रकाशित हुआ था। इसका शीर्षक था 'राजा प्रताप का तत्ववाद' उसमें आपने लिखा था "कि मैं एक गरीब आदमी हूँ। मैं प्रेम-धर्म का पुजारी हूँ। कम्युनिस्टों से भी मुझे नफरत नहीं है। मैं तो मानव-मात्र से भाई के नाते से प्रेम करता हूँ।"

अगस्त १६२८ के मध्य में जब राजा जी अपने साथियों के साथ नानकिंग आये थे, तब पैकिंग के 'नार्थ चाइना स्टेण्डर्ड' ने २६ अगस्त १६२८ के अङ्क में मुखपृष्ठ पर आपका और हवांग कुंग सू का चित्र एक साथ प्रकाशित किया था। आपके फोटो के नीचे लिखा गया था कि यह ऊपर दिया हुआ चित्र हिन्दुस्थानी शान्तिप्रिय व्यक्ति का है, जिसको चीन में कम्युनिस्ट कहकर बदनाम किया जारहा है, नीचे का चित्र उनके चीनी सहायक हवांग कुंगसू का है। दोनों इस समय पेकिंग में हैं। प्रताप उस समय सिनान में थे जब कि जापानियों पर प्रत्याक्रमण किये गये थे। प्रताप अपने को विश्व-बन्धुत्व की भावना से प्रेरित हुआ बताते हैं।"

पेकिंग में रहते हुये राजा साहब ने अनेक चीन विद्वानों के साथ दोस्ती कर ली थी। उनमें प्रोफेसर वाई० ऐस० चीन, प्रोफेसर ल्यू शिन तुंग और मि० यांग लामा भी थे। यांग लामा एक वर्ष से अधिक समय

तक आपके साथ रहे। राजा साहब ने कई भाषण भी दिये, जिनमें आपने अपने मिशन और बिचारों का विस्तार के साथ प्रतिपादन किया। एशिया की भिन्न-भिन्न जातियों और राष्ट्रों में परस्पर स्नेह-सम्बन्ध कायम करके तथा चीन और जापान में सहृदयता सम्पादन करने पर आपने विशेष जोर दिया।

फिर रूस की ओर

पैकिंग में राजा साहब को यह पता चला कि कुछ कारणों से अफगानिस्तान के अमीर अमानुल्लाह स्वदेश छोड़कर यूरोप चले गये हैं। आपने विचार किया कि यदि अमीर अमानुल्लाह चीन और जापान आ सकें, तो एशियाई राष्ट्रों में आसानी से एकता कायम हो सकेगी। आपने अपने एक जापानी मित्र से अनुरोध किया कि वे अमीर अमानुल्लाह को जापान आने का निमन्त्रण तार से दें। लेकिन अमीर से कुछ भी उत्तर न मिला। आपने स्वयं अफगानिस्तान जाने और स्वयं वहां की स्थिति के अध्ययन करने का निश्चय किया। सुदूर पूर्व में और अधिक दिन ठहरने की ऐसी कोई जरूरत भी न थी।

राजा साहब पैकिंग से जापान गये और वहां से आपने रूस जाने का पासपोर्ट प्राप्त किया। जापान से सुरागा होते हुये आप ब्लाडिवास्टक पहुंचे वहां आप समुद्र के किनारे पर एक सुन्दर होटल में ठहरे। एक दिन आप समुद्र के किनारे पर हवाखोरी कर रहे थे कि एक सज्जन ने आकर आपका अभिवादन किया। उसने अपना नाम डाक्टर कार्ल बासर बताया और जर्मन-राजदूत के रूप में अपना परिचय दिया। उसने आपको अपने यहां निमन्त्रित किया और दोनों में खूब बातें हुईं।

ब्लाडिवास्टक से राजा साहब रेलगाड़ी में मास्को के लिये विदा हुये। मंचूरिया के सीमावर्ती प्रदेश से गाड़ी गुजरी। उत्तर में तब बरफ पड़ रही थी, सरदी का मौसम शुरु हो चुका था। फिर भी आपने देखा कि लोगों के पास खाने के लिये भरपूर अन्न था और वे पूरी तरह सन्तुष्ट जान पड़ते थे। पूरे दस दिन बाद आप रूस की राजधानी मास्को पहुँचे।

मास्को में आपको आपके अफगान, स्विस और हिन्दुस्तानी मित्र मिले। आप ताशकन्द होकर काबुल जाने को उत्सुक थे। लेकिन ताशकन्द जाने के लिये पासपोर्ट मिलने में कुछ कठनाई थी। इसको हल कर लिया गया। मास्को स्थित ईरानी राजदूत से भी आप मिले। उसने आपको विश्वास दिलाया कि आप बिना किसी कठनाई के ईरान जा सकेंगे। ताशकन्द में आपको रुकना पड़ गया। वहां आपकी मुलाकात अफगानिस्तान के भूतपूर्व राजदूत मि० हाफिजुल्लाखाँ से हुई। उससे आपको पता चला कि अफगानिस्तान में अशान्ति एवं विद्रोह पैदा हो गया है और रूसी स्त्रियां तथा बच्चों को काबुल से हटाया जा रहा है। इन सब समाचारों की सचाई जानने के लिये आप अफगान-राजदूत से मिले।

राजासाहब की जेब खाली होने लगी और आपके लिये जीवन-निर्वाह की समस्या भारी हो गई। साधारण खर्च चलाना भी मुश्किल हो गया। आपने अपनी कई पुरानी चीजें बेचकर खर्च चलाने का प्रबन्ध किया और बहुत ही कम खर्च में काम निकालना शुरू किया। अफगानिस्तान जाना संभव न जानकर आपने ईरान जाने का विचार किया। ईरानी राजदूत से मिलकर आपने वहां के लिये पासपोर्ट प्राप्त कर लिया, रूसी राजदूत की मार्फत आपने रूसी सिक्के के बदले में ब्रिटेन के सिक्के प्राप्त कर लिये और ईरान में मेशद के धनी अफगान व्यापारी के नाम परिचय-पत्र भी प्राप्त कर लिया।

ईरान में

ताशकन्द से ईरान के लिये विदा होकर राजा साहब आश्काबाद पहुंचे। सब धर्मों की एकता के मिशन से प्रेरित होकर आप बहावी केन्द्र में आये। उनके एक सम्मेलन में आप शामिल हुए और कई मित्रों से मिले। ईरान आपके लिये कोई नया देश न था। १९१५ में आप पश्चिम के एक कोने से पूर्व के दूसरे कोने तक गये थे। तब आपको उत्तरीय प्रदेश में जाने का अवसर न मिला था। वह प्रदेश पहाड़ी और बहुत सुहावना है। वह रास्ता आपने मोटर से पूरा किया। शाम को

आप सेशद पहुंचे और सीधे उस अफ़गान के यहां गये, जिसके नाम आप पत्र लाये थे। उसने बड़े प्रेम से आपका स्वागत किया। स्वदेश की अवस्था के लिये वह काफ़ी चिंतित था। यहीं आप कुछ बहाई लोगों से मिले। उनके नाम आप आश्काबाद से पत्र भी लाये थे। पहिले तो वे बड़े चाव से मिले। लेकिन यह देखकर कि राजा साहब पक्के बहावी नहीं हैं, उन्होंने मुंह फेर लिया। आश्काबाद से आते हुए आप सुप्रसिद्ध मसोलियम के पास से गुजरे। उसको देखने के लिये आपने उसके भीतर जाना चाहा, तो साथियों ने यह कहकर रोक दिया कि पुराने ढंग के पुजारी और पुरोहित उनका वहां जाना पसंद न करेंगे।

सेशद से तेहरान के लिये आप डाकखाने की लारी से विदा हुए। रास्ते में सोवियत ट्रेड एजेण्ट ने आपको भोजन के लिये निमन्त्रित किया। एक जगह आपकी लारी एक खुड में गिर गई। वहां रात आपको एक गांव में बितानी पड़ी। तेहरान पहुंचने पर पहला समाचार आपको यह मिला कि बादशाह अमानुल्लाह काबुल छोड़कर कहीं चले गये हैं और वहां के बादशाह की गद्दी नादिर खाँ ने सँभाल ली है। आप समाचार की सचाई जानने के लिये अफगान दूतावास में गये। आपने देखा कि आपके पुराने मित्र सरदार सुलतान अहमद खां वहां के राजदूत हैं। उनसे मिलकर राजाजी को बहुत खुशी हुई और आपसे सब समाचार मालूम किये। वहां आपने अपने विचारों का प्रचार शुरू कर दिया और एशियाई सम्मेलन का आयोजन करने का भी निश्चय किया। इसके लिये आप स्थानीय पत्रों के सम्पादकों से मिले। 'सितारे' पत्र के सम्पादक ने आपसे कहा कि सरकारी सद्भावना के बिना तेहरान में कुछ भी हो नहीं सकेगा। उसने आपको मिनिस्टर तैमूरलाश से मिलने की भी सलाह दी। राजाप्रासाद में जाकर आपने उससे मिलने के लिये अपना कार्ड वहां छोड़ दिया। जापानी-राजदूत से भी आप मिले। एक दिन शाम को आपको मिनिस्टर से मिलने की सूचना मिली। राजा साहब ने इस मुलाकात का वर्णन इस प्रकार किया है कि

"सवेरे मैं मिनिस्टर से मिलने के लिये गया। मुझे सुन्दर ईरानी कालीनों से सजे हुये एक बड़े कमरे में ले जाया गया। कुछ और लोग भी मिलने के लिये आये। मि० सैफ आजाद को देखकर मैं चकित रह गया। इनसे मैं बर्लिन में मिला था। उसके बाद मुझे मिनिस्टर के कमरे में ले जाया गया। यह छोटा-सा कमरा था। उठकर मिनिस्टर ने मेरा स्वागत किया और मुझको अपने से कुछ ऊंची जगह पर बिठाया और कहा कि मैं तो आपसे मिलना ही चाहता था। मुझे पता चला था कि आप बोलशेवी हैं। एशियाटिक-सम्मेलन के लिये उसने साफ ही इन्कार कर दिया। उसने कहा कि यूरोपियन राष्ट्र इसको पसन्द नहीं करेंगे। हिन्दुस्तान के प्रति भी सहानुभूति प्रकट की; किन्तु कुछ कर सकने में असमर्थता प्रगट करते हुये कहा कि हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र होने का यत्न स्वतः ही करना चाहिये। काफ़ी देर तक बातचीत हुई। उसने मुझसे पूछा कि आपका विचार अब कहां जाने का है। मैंने कहा कि मैं यहां से मास्को लौटूंगा और वहां जाकर यह तय करूंगा कि मुझे पूर्व की ओर जाना चाहिये कि पश्चिम की ओर ?

मास्को की अन्तिम यात्रा

मिनिस्टर से मिलने के बाद राजाजी अपने मित्र अफगान-राजदूत सरदार सुलतान अहमदखां से मिले। उसको आपने बताया कि मैं अफगानिस्तान न जाकर रूस जाऊंगा। फिर भी आपने अफगानिस्तान के लिये पासपोर्ट बदलवा लिया। आप सोवियत-राजदूत से भी मिले। १९२३ में उससे पेकिंग में आपकी मुलाकात हुई थी। आप उसको भूल गये थे। राजदूत के कहने पर आपको याद आया। अपने पुराने मित्र मि० तकी जदेह से भी आप मिले। उसके कहने पर आप एक ईरानी अफसर सरतीब हबीबुल्लाह से भी मिले। उसने आपको फिर ईरान आने का निमन्त्रण दिया।

तेहरान से आप मोटर से पहलवी के लिये विदा हुये। सड़क बहुत

अच्छी थी और शहर भी बहुत अच्छा था। पहलवी से आप जहाज पर सवार होकर बाकू आये। वहां तेल की खानें हैं, जिन पर रूस का अधिकार है। आपके मित्र श्री सैफ आजाद भी उस जहाज पर सवार थे। वह जर्मनी जा रहे थे। बाकू से आप १९२९ के जुलाई मास में मास्को पहुंच गये। वहां अधिक दिन न ठहर कर आप चीन के लिये विदा हो गये। आपने पेकिंग जाने का निश्चय किया।

मास्को की आपकी यह अन्तिम यात्रा थी। उसके बाद मास्को आने का आपने कई बार विचार किया; किन्तु मोशियो स्टालिन की सरकार ने आपको रूस आने की अनुमति नहीं दी।
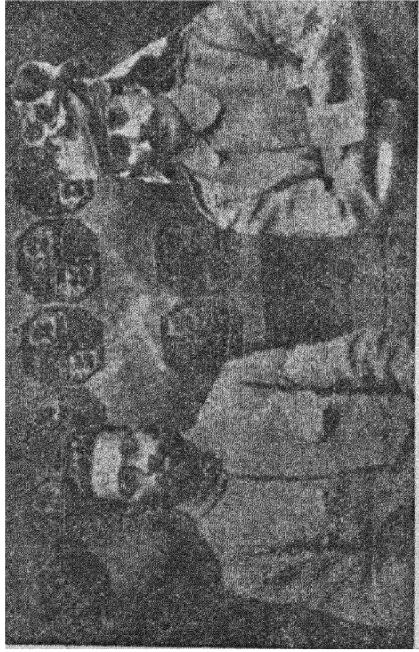
अफगान मिशन पर १९२० में

अफगान जनरल अब्दुल करीम खाँ के साथ पामीर की यात्रा में

☞

जापान में

अपने जापानी मित्र श्री ईबाबुची के साथ
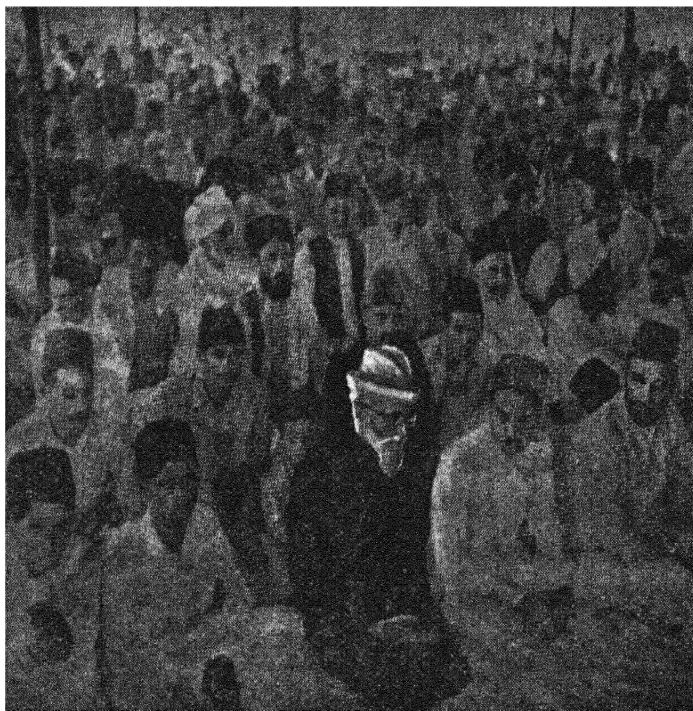
विश्व-प्रेम के पुजारी

बम्बई में २८ अगस्त, ४६ को ईद के दिन सार्वजनिक रूप से नमाज पढ़ते हुए

: १३ :

एशियाई देशों में

चीन व जापान में

१९२९ के अन्तिम दिनों में पेकिंग पहुंचकर राजाजी ने विश्व-संघ का एक केन्द्र वहां कायम कर दिया। आपके पुराने चीनी मित्र यंग-लामा ने आपको पूरा सहयोग दिया। वह आपके साथ डेढ़ साल तक रहा। आप चीन और कोरिया के अनेक स्थानों पर जाते-आते रहते थे। आपने 'विश्व-संघ' नाम का बुलेटिन भी प्रकाशित करना शुरू किया। यही बाद में जापान से प्रकाशित होता था। चार पृष्ठों के गश्ती पत्र के रूप में आप इसको प्रति मास निकालते थे और स्वयं इसका सम्पादन करते थे। बारह वर्षों तक, दिसम्बर १९४१ तक, इसका प्रकाशन बराबर होता रहा। कुछ कारणों से. जिनमें आर्थिक तंगी मुख्य कारण था, उसको बन्द कर देना पड़ा।

१९३२ में राजाजी जापान चले गये। जापानी मित्रों ने आपसे जापान में 'विश्व-संघ' का केन्द्र कायम करने का अनुरोध किया। इसी अनुरोध पर आप जापान आये और जापान आकर इस काम में लग गये। १९३४ में आपको केन्द्र कायम करने में वास्तविक सफलता मिल सकी।

बैंकोक में

१९३४ के शुरू में आपने स्याम, जिसको इस युद्ध में जापानियों ने थाईलैण्ड नाम दे दिया था, आने का विचार किया। जापान के बाद सुदूर पूर्व में यही देश स्वतन्त्र और स्वाधीन था। हिन्दुस्तानी वहां काफी संख्या में रहते थे। उनको आपका यह विचार जानकर अत्यधिक खुशी हुई। आपके स्वागत की शानदार तय्यारी की गई। ब्रिटिश दूतावास के अधिकारी यह सब जानकर विक्षुब्ध हो गये। उस समय वहां के

हिन्दुस्तानियों में विशेष जागृति नहीं थी। वे तो क्या, उस समय की स्यामी सरकार भी अंग्रेज-दूतावास के प्रभाव में थी। हिन्दुस्तानियों पर उनके नेताओं की मार्फत जोर डाला गया कि वे राजाजी का स्वागत न करें। कुछ को तो निर्वासित करने की भी धमकी दी गई। राजाजी जापानी जहाज से स्याम पहुंचे। अंग्रेज-दूतावास के रोकने पर भी बहुत-से हिन्दुस्तानी आपके स्वागत के लिये बैंकौक बंदरगाह पर उपस्थित हुये। गोरखपुर के श्री रामधन शाह उनके नेता थे।

अंग्रेज-दूतावास के सर जोसिच क्रामले ने स्यामी सरकार पर जोर डाला कि वह राजाजी को जल्दी-से-जल्दी बैंकौक चले जाने को कहें। स्यामी सरकार ने आपको इस आशय का नोटिस तक दे दिया और आपने मजबूर होकर उसको मंजूर कर लिया। लेकिन दो मास तक कोई जहाज जापान जाने के लिये मिलना संभव न था। इसलिये आपको वहां रुकना पड़ गया। स्यामी सरकार इसके लिये सहमत हो गई; और राजाजी को सेण्ट्रल पुलिस स्टेशन में कैद रखा गया। कैद रखने पर भी आपको कोई विशेष कष्ट न होने देकर आपकी सुख-सुविधा का पूरा ध्यान रखा गया। आपके मित्रों और हिन्दुस्तानियों को मिलने-जुलने में कोई रोक-टोक न थी। उन्होंने ही आपके भोजन का प्रबन्ध किया।

जापानी जहाज मिलने पर पन्द्रह दिन बाद आप बैंकौक से चलकर जापान आ गये। लौटकर आपने विश्व-संघ का केन्द्र संगठित किया। टोकियो के पास कोकूकुंजी में आपने कुछ जमीन ली। कुछ झोंपड़ियां वहां बनाई गईं। वहां ही राजाजी रहने लगे। अतिथिशाला की झोंपड़ियों के अलावा कुछ झोंपड़ियों में भिन्न-भिन्न धर्मों के प्रतीक भी रखे गये, जिससे सब धर्मों की एकता का भान हो सके। इस सब पर ४५०० येन खर्च आये। उस समय एक सौ येन अस्सी रुपये के बराबर होते थे।

: १४ :

जापान में स्थायी निवास

१९३२ के बाद आप स्थायी तौर पर जापान में बस गये और आपका अधिक समय कोकूकुंजी में स्थापित किये गये विश्व-संघ-केन्द्र में बीतने लगा। जब-तब आप जापान के अन्य शहरों में, विशेषकर उनमें जिनमें हिन्दुस्तानियों की संख्या अधिक थी, जाते और वहां सब धर्मों की एकता और विश्व-प्रेम के सम्बन्ध में भाषण देते थे। इस सारे कार्य के लिये आपने जापान की सरकार से कभी कुछ भी सहायता नहीं ली। जापान में रहने वाले धनी हिन्दुस्तानी आपकी भरपूर सहायता करते थे। वहां प्रायः उन हिन्दुस्तानियों के दफ्तर और प्रतिनिधि ही रहते थे, जिनका आयात-निर्यात का काम होता था और जिनके केन्द्रीय कार्यालय हिन्दुस्तान, बर्मा, मलाया, स्याम आदि देशों में थे। ये आपकी काफी सहायता करते थे। जापानी जनता की सिर्फ सहानुभूति प्राप्त करने का यत्न आपने अवश्य किया।

केन्द्र की स्थापना

राजाजी का केन्द्र और कुटिया बहुत-से हिन्दुस्तानियों के लिये आश्रय का स्थान बन गई। जो स्वदेश नहीं लौट सकते थे, वे राजाजी के पास रहते और स्वेच्छा से आपके काम में हाथ बटाते। ईबाबुची नाम का एक जापानी युवक राजाजी के पास रहता था। वह चार वर्षों तक, १९३६ से १९४० तक, आपके पास रहा। अपनी मेहनत, ईमानदारी, सचाई और लगन से उसनें आपका स्नेह प्राप्त किया। राजाजी ने उसको आजन्म अपने यहां रहने की छूट दे दी, परन्तु १९४० में जबरन भरती होने पर सेना में भरती होकर उसको चीन जाने को लाचार होना पड़ गया।

१९३९ में आप एक बार कुछ दिनों के लिये चीन गये थे। पेंकिंग के प्रोफेसर लिऊ शिन तुंग ने आपको निमन्त्रित किया था। पेंकिंग में

आपने कई भाषण दिये। विद्यार्थियों के भिन्न-भिन्न स्कूलों में भी आपने छः महत्वपूर्ण भाषण दिये। शहर के उत्तर में स्थापित लड़कियों के स्कूल में भी आपका एक भाषण हुआ।

कैण्टन के हिन्दुस्तानियों के निमन्त्रण पर आप वहां भी गये। वहां भी आपके अनेक भाषण हुए।

जापान में रहते हुए आपने सभी देशों और सभी जातियों के लोगों के साथ अपना सम्पर्क बनाये रखा। अफगानों से आपका विशेष मेल-जोल था। मासिक बुलेटिन भी निकाला गया। उसका आप स्वयं सम्पादन करते थे। उसमें अपनी विचार-धारा देने के साथ-साथ धर्म के सम्बन्ध मे अपने विचारों, विश्व की घटनाओं पर टीका-टिप्पणी, अपने जीवन की झांकी, अपने पत्र-व्यवहार के मुख्य हिस्से, अपनी आर्थिक स्थिति तथा ऐसे ही अन्य लेख दिया करते थे। उसको देखने से पता चलता है कि राजाजी का पत्र-व्यवहार सभी देशों के और सब धर्मों के मानने वाले बड़े-बड़े लोगों के साथ हुआ करता था। वे आपके विश्व प्रेम के मिशन मे दिलचस्पी लेते और यह मानते थे कि संसार में सुख, शांति तथा सन्तोष की स्थापना के लिये वही आशा की एक किरण है। जापान आने वाले विदेशों के कूटनीतिक भी आपकी कुटिया में आकर आपके प्रति श्रद्धा और आपके मिशन के प्रति प्रेम प्रगट किया करते थे। ईरान के टोकियो स्थित राजदूत मि. मुहम्मद बहादुरी अपनी पत्नी और अपने दो मेहमानों के साथ अगस्त १९३९ में राजाजी से मिलने उनकी कुटिया पर गये थे। उनके निमन्त्रण पर राजाजी भी उनके निवास-स्थान कासईजावा पहाड़ी पर जाकर उनके साथ कुछ दिन रहे थे। वे जब भी टोकियो आते, तो राजाजी को साथ लेकर अफगान-राजदूत से मिलने जाते थे। इन मुलाकातों का लक्ष्य हिन्दुस्तान के आस-पास के देशों के साथ मैत्री सम्पादन करना था, जिससे अनुकूल समय पर उनसे कुछ लाभ उठाया जा सके।

एशिया के लोगों को पश्चिम के लोगों की गुलामी से छुटकारा

दिलाने के उद्देश्य से होने वाली सभाओं और समारोहों में आप विशेष भाग लिया करते थे। पान-एशियाइटिक आन्दोलन की ओर से अगस्त १९३९ में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरोध में हुई सभा के लिये तो आपको विशेष निमन्त्रण देकर बुलाया गया था। टोकियो के हिविया हॉल में इसका आयोजन किया गया था। उसमें दस हजार से अधिक लोग इकट्ठे हुये थे। राजाजी ने अंग्रेजी में भाषण देते हुए अपनी बीमारी और असमर्थता का उल्लेख करते हुये कहा कि मैंने देखा था कि, रूस में हुई सोवियन-क्रान्ति का रूप ब्रिटिश-विरोधी था, किन्तु दोनों ने अपने मतभेद दूर कर लिये और ऐसे मिलकर काम करने लगे, जैसे कि दोनों राज्यों के स्वार्थ एक-से हों। अंग्रेजों की कूटनीति से जापानियों को सचेत करते हुये आपने कहा कि आपको खबरदारी रखनी चाहिये कि कहीं आपकी सरकार को इंग्लैंड पूर्व का चौकीदार न बना दे। 'एशिया एशियावालों के लिये है' की भावना के जापान में पैदा होने का आपने स्वागत करते हुये कहा कि जब मैं देखता हूं कि आपके कुछ बड़े लोग इस भावना से सोचते और काम करते है, तब मुझे बहुत खुशी होता है। यदि एशिया में पूरी शान्ति, स्वतन्त्रता और सन्तोष कायम हो जाय, तो सारे संसार को ठीक रास्ते पर आने में समय नहीं लगेगा। आपका भाषण बहुत उत्साह के साथ सुना गया। यह स्पष्ट है कि आपका ध्येय समस्त विश्व और मानव के लिये सुख, शान्ति, सन्तोष तथा स्वतन्त्रता प्राप्त करना था।

सितम्बर १९३९ में थाईलैण्ड के महाराज आनन्द महीदल का, जिनका कि स्वर्गवास हो चुका है, जन्म दिन जापान मे मनाया गया। एक आयोजन थाई-दूतावास में और दूसरा विश्व-संघ विभाग के भूतपूर्व मन्त्री और एशियाइटिक स्टुडेण्ट लीग के वर्तमान मन्त्री डाक्टर पी० लागामूका रुइस की ओर से किया गया था। दोनों में राजाजी शामिल थे। आपने रशिया के लोगों की आजादी का प्रतिपादन करते हुये उसके लिये प्रयत्न करने पर जोर दिया।

अक्टूबर मास में अफगान-दूतावास की ओर से टोकियो में अफगानिस्तान के बादशाह जहीरशाह का जन्म दिन मनाया गया। उसमें भी आप निमंत्रित किये गये। इस समारोह का वर्णन राजाजी ने स्वयं अपने बुलेटिन मे किया था। तुर्की और ईरान के परिचित प्रतिनिधियों से आपकी यहां मुलाकात हुई।

इन्हीं दिनों मे जापान के वस्त्र-व्यवसाय के बोर्ड के निमन्त्रण पर हिन्दुस्तान से एक शिष्टमण्डल आया था। लाहौर के वाई० एम० सी० ए० के मन्त्री श्री रलियाराम इसके नेता थे। मद्रास असैम्बली के डिपुटी-स्पीकर सरीखे सज्जन इसके सदस्य थे। बोर्ड और हिन्दुस्तानी विद्यार्थी सत्र की ओर से उनके सम्मान में दो भोज दिये गये थे। दोनों मे आपको निमन्त्रित किया गया था।

श्रीमती रुक्मिणी लक्ष्मीपति के मद्रास की धारासभा की डिपुटी-स्पीकर चुने जाने पर आपने उनको एक विशेष सन्देश भेजा और उनकी मार्फत एक सन्देश प्रान्त के नेता श्री राजगोपालाचार्य को भी भेजा। उसमे आपने अपने कार्य और मिशन पर विशेष रूप से प्रकाश डाला।

मद्रास में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल के दिनों में श्री वी० आर० चित्रा गृह-उद्योगों के सुपरिण्टेण्डेण्ट थे। जापान के औद्योगिक विकास का अध्ययन करने के लिये आप यहां आये थे। आप राजाजी के विश्व-संघ केन्द्र मे भी गये। राजा साहब की आपके साथ खूब लम्बी बातचीत हुई और आपकी मार्फत राजाजी ने कांग्रेस के नेताओ के नाम विशेष सन्देश भी भेजा 'विश्व-संघ' पत्रिका के कुछ अङ्क भी दिये और बताया कि मैं गुप्त रूप से कुछ भी नहीं कर रहा हूं। जो भी मैं करता या कहता हूं, वह सब इस पत्रिका मे लिख देता हूं।

कलकत्ता के भूतपूर्व मेयर श्री ए. के. एम. जकरिया भी इन दिनों में जापान में आये और श्री एम० इस्माइल के साथ राजाजी के यहां ८ नवम्बर १९३९ को गये। राजाजी की आपके साथ खूब बातें हुईं। उस समय युद्धजन्य परिस्थितियों से लाभ उठाकर हिन्दुस्तान की आजादी

हासिल करने पर ग्रापने विशेष जोर दिया। आपने जापान, जर्मनी ग्रौर रूस के साथ सम्बन्ध स्थापित करना ग्रावश्यक बताया।

हिन्दुस्तान के ग्रलावा ग्रन्य देशों से ग्राने वाले भी ग्रापके दर्शनों के लिये ग्राते थे। ग्रापके मित्र ग्रौर प्रशंसक सारे विश्व में फैले हुये थे। ग्रक्तूबर १६३६ में तातार के एक सुप्रसिद्ध विद्वान् मौलाना मूसा जारुल्ला टोकियो ग्राये थे। २० वर्ष पहले ग्रापसे मास्को में राजाजी की मुलाकात हुई थी। पाशा तौफीक शरीफ के मकान में ग्रापसे राजाजी मिले ग्रौर ग्राप फिर राजाजी के आश्रम में भी गये। मौलाना पीछे हिन्दुस्तान भी गये थे ग्रौर सुप्रसिद्ध तत्ववेत्ता डाक्टर भगवानदास जी से मिले थे। उनकी ग्रापने बहुत प्रशंसा की। कांग्रेस के ग्रधिवेशन में भी आप सम्मिलित हुये थे। पण्डित जवाहरलाल नेहरू के व्यक्तित्व का ग्राप पर विशेष ग्रसर पड़ा था।

जापान निवासी हिन्दुस्तानी कोकूकुंजी जाते-ग्राते रहते थे। जापान ग्रौर चीन के इण्डियन नेशनल एसोशियेशन के प्रधान श्री ग्रानन्दमोहन सहाय विशेष रूप से ग्रापके यहां ग्राते-जाते थे। स्वर्गीय श्री डी. एस. देश पाण्डे भी विशेष रूप से ग्राने जाने वालों में से थे। श्री सहाय के परिवार के लोगों ने भी राजाजी का स्नेह सम्पादन किया था। राजाजी के साथ श्री सहाय स्वदेश की आजादी के बारे में विशेष चर्चा किया करते थे। 'विश्वसंघ' पत्रिका में श्री सहाय के सम्बन्ध में विशेष चर्चा रहा करती थी। चीन से लौटकर १६३६ के ग्रक्तूबर मास में ग्रापने राजाजी को एक पत्र लिखा था। इसमें श्री सहाय ने यूरोप के युद्ध से पैदा हुए ग्रवसर से लाभ उठाने के लिये चीन ग्रौर जापान की पारस्परिक लड़ाई के खत्म होने पर जोर दिया था। इसी उद्देश्य से श्री सहाय ने चीन से एक आकाशवाणी भाषण दिया था, जिसमें जापान ग्रौर चीन से इस बारे में ग्रपील की गई थी। राजाजी ग्रापके इन विचारों से सर्वथा सहमत थे। इसी लिये दोनों में विशेष स्नेह था।

रूस जाने का प्रयत्न

इसी उद्देश्य से राजाजी ने युद्ध छिड़ते ही सितम्बर १६३६ में रूस जाने का प्रयत्न किया और रूसी सरकार के साथ पासपोर्ट के लिये लिखा पढ़ी भी की, किन्तु आपको मोशियो स्टालिन की सरकार ने पासपोर्ट नहीं दिया। टोकियो स्थित रूसी राजदूत ने भी काफ़ी अड़चनें पैदा कीं। उसने आपसे आपकी सारी जीवनी की रिपोर्ट और पुराना पासपोर्ट भी मांगा। जीवनी की रिपोर्ट तो आपने लिखकर दे दी; पर पासपोर्ट आपके पास कहाँ था। कारण जो भी हो, आपको पासपोर्ट न मिला। जर्मनी तथा रूस की जिस दोस्ती का स्वप्न आप १६१४ की लड़ाई के दिनों में देखा करते थे, उसको अब मूर्त रूप में देखकर उससे लाभ उठाने की आपकी इच्छा मन की मन में ही रह गई। आपके मित्र भी आपके इस विचार से सहमत न थे कि आप रूस जाकर उससे सहायता की मांग करें। लेकिन, आपने दूसरों के विरोध या नापसन्दगी की कभी भी परवा न की और निरन्तर अपने तरीके से आप अपने ध्येय की पूर्ति करने में लगे रहे। इसलिये आप रूस जाने के लिये बहुत ही अधिक उत्सुक थे।

जापान में रहने वाले हिन्दुस्तानियों पर आप आर्थिक दृष्टि से निर्भर थे। श्री आनन्दमोहन सहाय आपके लिये धन संग्रह किया करते थे। कभी-कभी जेब खाली होने और आर्थिक कठिनाई होने पर भी आपका काम बराबर चलता रहता था। १६४१ में आपको विशेष आर्थिक कठिनाई का सामना करना पड़ा। आपने एक नया पत्र 'वर्ल्ड कम्पेनियन' भी प्रकाशित करना शुरू किया था। आप कोबे भी गये, जहाँ कि हिन्दुस्तानी बहुत अधिक संख्या में रहते थे। श्री सहाय उस समय शंघाई गये हुये थे; इसलिये आपको बहुत निराशा हुई। फिर भी हिन्दुस्तानियों ने आपकी सहायता की और आपको आर्थिक चिन्ता से मुक्त कर दिया।

स्वदेश वापिस लोटने के प्रयत्न

जापान में रहते हुये आपने हिन्दुस्तान के साथ सम्पर्क बनाये रखने का प्रयत्न किया। आपके अनेक मित्रों ने आपको हिन्दुस्तान वापिस बुलाने के लिये निरन्तर यत्न किया और आपको अपने यत्नों से अवगत करते रहे। अगस्त १९३९ में कौंसिल ऑफ स्टेट के माननीय सदस्य राजस्थान-केसरी श्री बियाणी ने आपको इस सम्बन्ध में एक पत्र लिखा था। उसमें बियाणीजी ने लिखा था कि "आपका १७ जून १९३९ का पत्र 'विश्व-संघ पत्रिका' के अङ्क के साथ मुझे मिला, जिसको आपने श्री ओबिदुल्ला सिन्धी को भेजने को लिखा है। उनको मैं भेज रहा हूं। मैं आपको बहुत अरसे से पत्र नहीं लिख सका। इसका यह मतलब नहीं कि मैं आपको भूल गया हूं। मुझे यह जानकर बहुत दुःख हुआ है कि आपको स्वदेश लोटने के लिये अनुमति देने से वायसराय ने इन्कार कर दिया है। विदेशी शासन से और आशा ही क्या की जा सकती है? ऐसी घटनाओं से ही हमारी स्वराज्य की मांग को विशेष बल मिलता है। आपके स्वदेश लौटने के लिये मुझसे जो कुछ भी बनेगा, मैं अवश्य करूंगा। आपके त्याग और कष्ट-सहन में ही हमारे स्वराज्य का बीज छिपा हुआ है। यही आपके लिये परम सन्तोष की बात होनी चाहिए। आप और हम एक दूसरे से कितनी भी दूर क्यों न हों, हिन्दुस्तान सदा आपके हृदय में और आप हम सबके हृदय में सदा ही बने रहते हैं। हम उस दिन की आशा में हैं, जिस दिन आज की गुलामी से छुटकारा पाकर हम स्वतन्त्र 'हिन्दुस्तानियों' की तरह एक दूसरे से मिलेंगे।"

आपके चाचा मुरसान के कुंवर हरिकृष्णसिंह जी ने भी इस बारे में बहुत प्रयत्न किया और कई बार सरकार से भी उन्होंने प्रार्थनायें कीं। उन्होंने १९३९ के अक्टूबर के महीने में राजाजी को लिखा था कि मैं इस बारे में प्रान्तीय कांग्रेसी सरकार के प्रधान मन्त्री श्री गोविन्दवल्लभ-पन्त और गान्धीजी से भी मिला; किन्तु सफलता नहीं मिली। उनकी

सम्मति में राजाजी की विश्व-संघ की प्रवृत्तियां भी इसमें बाधक थीं। लेकिन, ऐसी बातों से राजाजी अपना मार्ग बदलने वाले नहीं थे। आप अपने काम में लगे रहे।

राष्ट्रपति के साथ पत्र-व्यवहार

कांग्रेसी नेताओं के साथ राजाजी का पत्र-व्यवहार निरन्तर जारी रहा। इनमें अन्य सभी विभागों की चर्चा किया करते थे। सितम्बर १९३९ में आपने तत्कालीन कांग्रेस-प्रेसिडेण्ट राष्ट्रपति डाक्टर राजेन्द्र-प्रसादजी को भी एक पत्र लिखा था। श्री राजेन्द्रबाबू ने उत्तर में लिखा था कि "इससे पहिले मेरा आपका कोई परिचय और पत्र-व्यवहार नहीं हुआ, किन्तु सार्वजनिक जीवन से सम्बन्ध रखने वाला हर कोई व्यक्ति आपके सम्बन्ध में काफी जानकारी रखता है। मुझे भी इसी प्रकार से आपके सम्बन्ध में जानकारी प्राप्त हुई है.......श्री आनन्दमोहन सहाय मुझे जब-तब लिखते रहते हैं। जापान जाने से पहले वे मेरे साथ काम करते थे। उनके और उनके काम के बारे में मेरी विशेष दिलचस्पी है।"

: १५ :

राजाजी का विश्व-संघ

१९१४-१५ के महायुद्ध के भीषण परिणामों पर विचार करने और उसके बाद संसार का भ्रमण करते हुये आपके दिमाग में 'विश्व-संघ' की कल्पना पैदा हुई और आपने यह अनुभव किया कि संसार को सब मुसीबतों से छुटकारा दिलाने के लिये यही एकमात्र उपाय है। इसी सम्बन्ध में आपने कुछ पुस्तिकायें भी लिखीं। १९१९ में आपने लगकर अपने इस मिशन का प्रचार शुरू किया था। जर्मनी से तब आपने अपनी 'विश्व-संघ' पत्रिका का बुलेटिन के रूप में प्रकाशन भी शुरू किया था। 'रिलीजन आफ लव' नाम की पुस्तिका में आपने विश्व-संघ का जो चित्र उपस्थित किया था, उसके अनुसार श्रीमती प्रिफ्त जगत फाकमान ने एक संस्था कायम की थी। ये लेपजिग हाईकोर्ट के जज की पत्नी थीं। राजाजी ने स्वयं अभी कोई संस्था कायम नहीं की थी।

विश्व-संघ के सिद्धान्त

१९४१ में आपने उन सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया, जिनके आधार आप विश्व-संघ की रचना करना चाहते थे। 'विश्व-संघ' पत्रिका, के एक अङ्क में आपने उनका उल्लेख निम्न प्रकार किया थाः—

(१) एक राजधानी बनाकर विश्व-संघ की स्थापना की जाय। यह राजधानी सेनुलुलू हो तो अच्छा है।

(२) महाद्वीप उस संघ के स्वायत्त शासन के प्रान्त हों।

(३) महाद्वीप के प्रान्तों को तीन, चार या पांच स्वायत्त शासन प्राप्त जिलों में बांटा जाय।

(४) हर प्रदेश स्वायत्त शासन की इकाई होगा।

(५) प्रादेशिक इकाइयों के प्रतिनिधियों से जिले की, जिलों के प्रति-

निधियों से प्रान्तकी और प्रान्तों के प्रतिनिधियों से संघ की शासन-व्यवस्था का निर्माण किया जायगा। (६) सहोद्योग पद्धति अपनाई जायगी। लोगों के छात्रावस्था से ही छोटे-छोटे संघ बनायेंगे, छोटी छोटी फैक्टरियां भी बनाई जायेंगी, जिससे कि विद्यार्थियों को पढ़ाई के समय और सिपाहियों को भी खाली समय में उत्पादन में लगाया जा सकेगा। (७) लक्ष्य यह होगा कि सबकी जरूरतों को पूरा किया जाय, किसी भी प्रकार के पक्षपात या रियायत से काम न लिया जाय। (८) सब धर्मों की एकता का प्रचार और प्रतिपादन किया जायगा। (९) पूर्णस्वास्थ्य, सौन्दर्य प्रतिभा और नैतिकता का विकास करने के लिये सन्तान की उत्पत्ति तथा लालन-पालन के सम्बन्ध में वैज्ञानिक ढंगों का प्रचार किया जायगा। (१०) प्रगति के लिये प्रयत्न किया जायगा। (११) विचार-स्वातन्त्र्य के लिये पूरी आजादी रहेगी। (१२) अन्तर्जातीय एवं अन्तर्देशीय विवाह-सम्बन्धों को प्रोत्साहन दिया जायगा। (१३) किन्तु इस बारे में जोर-जबरदस्ती से काम न लेकर हर एक को अपना साथी चुनने की स्वतन्त्रता रहेगी। (१४) अन्ध-विश्वासों को डंडे से नहीं, किन्तु प्रचार से दूर किया जायगा। (१५) प्रत्येक को जीवन-यापन की स्वतन्त्रता रहेगी, किन्तु उसका दूसरों के सामाजिक जीवन पर बुरा असर नहीं पड़ना चाहिये। (१६) छोटे-छोटे संघों का निर्माण लोगों की स्वतन्त्र इच्छा के आधार पर किया जायगा जो एक संघ में नहीं रहना चाहेंगे, उनको दूसरे में रहने की आजादी रहेगी। (१७) इन संघों के नेता वयोवृद्ध, सच्चरित्र, सच्चे और सहृदय लोग ही बनाये जायेंगे। धूर्त तथा षडयन्त्री लोगों को किसी भी काम में हस्तक्षेप नहीं करने दिया जायगा। (१८) स्त्री-पुरुषों के समान अधिकार होंगे। माताओं का विशेष ध्यान रखा जायगा। (१९) संघों में सभी धर्मों के चिन्ह को स्थान दिया जायगा और धर्मों के अनुसार पूजा-पाठ तथा प्रार्थना हुआ करेगी। (२०) समता, एकता तथा सरूपता मुख्य तत्व रहेंगे।

इन सिद्धान्तों की व्याख्या करने के अलावा समय-समय पर आप

अपनी योजना की भी विस्तार के साथ व्याख्या करते रहते थे। सब धर्मों की एकता और विश्व के समस्त लोगों में सहृदयता एवं सहयोग पर आप विशेष जोर देते थे। विश्व-संघ की यह योजना ही संसार की सारी मुसीबतों का आपकी दृष्टि में एक-मात्र इलाज थी और अपने विचार को उपस्थित करने में आप कभी भी चूकते न थे। सारे मानव समाज का एक परिवार बनाना ही संसार के लोगों के सुख और शान्ति के लिये आपका लक्ष्य था। दूसरे देशों के लोगों, नेताओं अथवा राजनीतिज्ञों को भी जब आप विश्व की नयी व्यवस्था या विश्व संघ की बात कहते हुये देखते, तब यह अनुभव करके कि आप अकेले ही नहीं हैं, आपको बड़ा सन्तोष होता। सितम्बर १६३६ में हिन्दुस्तान के किसी हिन्दी पत्र में यह पढ़कर आपको बहुत ही अधिक प्रसन्नता हुई कि पण्डित जवाहरलाल जी नेहरू ने एक लेख लिखकर इस विषय का प्रतिपादन किया है कि "आज हमें विश्व-संघ की जरूरत है।" एशिया के दूसरे नेता चीन के श्री वाग चग वी थे, जिन्होंने राजाजी के विचारों का हार्दिक समर्थन किया था। आप डाक्टर सनयात सेन के दाहिने हाथ थे और चीन-जापान के पारस्परिक संघर्ष को मिटाने के विचार से बाद में जापान के साथ मिल गये थे।

विश्व का विभाजन

आपकी इस योजना का सबसे अधिक दिलचस्प भाग उसके अनुसार किया गया विश्व का विभाजन है। आपने नये नामों के साथ विश्व का एक नया नक्शा तय्यार किया था। हाई हवाई द्वीप के होनुलुलू को विश्व-संघ की राजधानी बनाकर सारे संसार को आपने मुख्यतः दो भागों में बांटा। एक का नाम पूर्वीय गोलार्ध और दूसरे का पाश्चमीय गोलार्ध रखा। पूर्वीय गोलार्ध को तीन प्रान्तों मे बांटकर उनके नाम आपने बुद्ध, मुहम्मद और क्राइस्ट रखे।

(क) मुख्यतः एशिया के प्रांत को आपने 'बुद्ध' नाम दिया है और

इसकी राजधानी श्रीनगर नियत की है। बुद्ध प्रांत को निम्नलिखित पांच जिलों में बांटा गया है।—

(१) अरब जिला—राजधानी 'मदीना,'

(२) तुरान जिला—राजधानी 'ताशकन्द,'

(३) सुवर्ण भूम जिला—राजधानी 'सिंगतांओ,'

(४) आर्य जिला—राजधानी 'कराची,' जिसका नाम आपने 'द्वारका' रखा है।

(५) सुवर्ण आर्य जिला—राजधानी 'बैंकौक'।

(ख) "मुहम्मद" प्रान्त में मुख्यतः अफ्रीका को रखा गया है, इसकी राजधानी 'एडिस अबाबा' रखी गई है। इसको निम्नलिखित चार जिलों में बांटा गया है।

(१) अरब, एशिया और अफ्रीका में यमन से लेकर मास्को तक का प्रदेश रखा गया है। मदीना इसकी राजधानी है।

(२) लीबेरिया—सूदान के पश्चिम का अफ्रीका, जिसकी राजधानी मोनोरविया रखी गई है।

(३) अली—दोनों ओर से समुद्र से घिरा हुआ प्रदेश, जिसकीरा जधानी जंजावार है।

(४) ट्रांसवाल—दक्षिण अफ्रीका का भाग, जिसकी राजधानी प्रिटोरिया रखी गई है।

(ग) "क्राइस्ट" नाम आपकी योजना में यूरोप का रख गया है। इसको तीन जिलों में बांटा गया है। वे जिले हैं—

(१) पूर्वीय जिला—यूनान से पोलैण्ड तक—राजधानी बुडापेस्ट।

(२) नार्डिक—उत्तरीय राज्य—राजधानी कोयनटैगन।

(३) लैट्रस—इटली, फ्रांस, स्पेन और पोर्चुगाल का प्रदेश भाण्ट कैसलो राजधानी।

तुरान नाम के जिले में एशिया और यूरोप के सारे ही रूस को शामिल किया गया है और उसी में तुर्की को रखा गया है ।

(घ) अमेरिका को एक अलग प्रांत बताकर 'पनामा' उसकी राजधानी रखी गई है ।

एक कविता

इस योजना को पसंद करने वालों के साथ राजाजी प्रायः पत्रव्यवहार करते रहते थे । मज दें शुश्रान आन्दोलन के प्रवर्तक डाक्टर श्रो० जेड० हानीश की शिष्या एक महिला ने राजाजी की योजना की सराहना करते हुये उनको एक कविता भेजी थी । डाक्टर की अपनी बनाई हुई यह कविता थी । राजाजी ने इसको बहुत पसन्द किया । उसमें कहा गया था कि "विश्व-संघ की आवाज सब देशों के लोगों की आवाज है । सब दोस्त और दुश्मन सब कुछ भुलाकर हाथ फैलाकर इसका स्वागत करें । आशा और साहस का हृदय में संचार हो और सारा भ्रम दूर हो । विश्व-संघ में परमात्मा का राज्य कायम हो । प्रजातन्त्र की सुनहरी रेखा के साथ नये सम्बन्ध पैदा हों । विश्व-संघ के नाम से नये संसार के जन्म का हम ऐलान करते हैं । उठो-जागो ! संसार से अंधेरा दूर करो । सबके लिये आजादी प्राप्त करो और नव-युग का निर्माण करो ।"

आर्यन योजना

१९४१ के मध्य में राजा जी को एक नया विचार सूझा । इसका लक्ष्य भी हिन्दुस्तान की आजादी ही था । राजा जी के शब्दों में कहें तो इसका लक्ष्य आसाम से ईरान तक के आर्य प्रदेश को स्वतन्त्र करना था । इसी लक्ष्य से आप एक "आर्य-सेना" खड़ी करना चाहते थे । इस आर्य-सेना के लिये आपने एक बड़ा पीला झण्डा बनाया था, जिस पर आठ फलकों का चक्र बनाया गया था । इसका विधि-विधान भी आपने तय्यार किया था । यह योजना सफल न हो सकी । इसके कई कारण थे । एक तो

संघर्ष और लड़ाई के दिनों इसको सैनिक मिलने संभव न थे, दूसरे जापान तथा जर्मनी की सहायता के बिना सफल होना संभव न था। इस नई योजना से भी स्वदेश को आजाद देखने की आपकी उत्कट इच्छा और विश्व-संघ की योजना को सफल बनाने की आकांक्षा का स्पष्ट परिचय मिलता है।

राजाजी और धर्म

सब धर्मों की एकता और विश्व-प्रेम के लिये राजाजी पागल हो रहे थे। आप इसके लिये किसी भी धर्म को बड़ा या छोटा, भला या बुरा न मानकर सबका समन्वय करने के पक्षपाती हैं, इसीलिये सब धर्मों के प्रतीक को आप एक-सा मानते हैं। कोकुबूंजी के आपके आश्रम में इसी दृष्टि से सब धर्मों के प्रतीक संग्रह किये गये थे। आप सब धर्मों का एक सर्वीय केन्द्र बनाने के पक्षपाती हैं। अपने इस विचार को आपने अपने आश्रम कोकुबूंजी में मूर्त रूप दिया था। आपकी इस योजना, उपाय और मार्ग के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न मत हो सकते हैं, किन्तु इसमें मतभेद नहीं हो सकता कि आपने अपने विचार और अपने ढंग से सारे मानव समाज को एक धरातल पर लाकर आपस के मतभेद को दूर करने और संसार में सुख-शांति कायम करने का प्रयत्न किया। भिन्न-भिन्न धर्मों का समन्वय करने का भी आपने यत्न किया। आपने एक बार कहा था कि पैगम्बर, क्राइस्ट, बुद्ध और कृष्ण में मेरे लिये कुछ भी अन्तर नहीं है। मानव जाति के विकास के लिये सब ने एक-सा प्रयत्न किया है। यह कोई नयी बात या मेरा नया आविष्कार नहीं है। पांच हजार वर्ष पहले कृष्ण ने यह बात कही थी। संसार से पाप का नाश करने के लिये ही भगवान कृष्ण, बुद्ध, क्राइस्ट और मुहम्मद के रूप में प्रकट हुये। सब धर्मों की एकता का प्रतिपादन करते हुये भी आपका मत यह है कि संसार अन्त में 'अहिंसा' को ही स्वीकार करेगा।

अनेक लोगों और प्रचारकों ने भी आपको इसके लिये अपनी सेवायें भेंट कीं और आपसे नेतृत्व करने का अनुरोध किया। अमेरिका को केलिफो-

निया स्टेट के लायन्स वेलो स्थान से एक मुसलमान भिक्षु श्री एल० सालिम बीक ने आपको लिखा था कि "मैं हर पाचवें वर्ष जेरूसलम में सब धर्मों का और हर वर्ष जेदाह में मुसलमानों का राजनीति और साम्प्रदायिकता से रहित एक सम्मेलन करने का आन्दोलन कर रहा हूँ। किसी के नेतृत्व या संरक्षकता में सब धर्मों के अलग-अलग संघ बनाकर ही उनका एक संघ आसानी से बनाया जा सकता है। मैं इस दिशा में जो कुछ भी मुझ से हो सकेगा करने को तय्यार हूँ। यदि आप पसंद करें तो आपका धार्मिक नेतृत्व हम स्वीकार करेंगे और आप यहां पधारने की कृपा करें।"

इसी प्रकार एक बौद्ध भिक्षु ने भी आपको पत्र लिखा था और आपके आदर्श को अनुकरणीय बताया था।

राजा जी ऐसे अवसरों का लाभ उठाकर अपनी योजना को आगे बढ़ाने में पीछे रहने वाले न थे; किन्तु आपके मार्ग में कठनाइयां भी कुछ कम न थीं। सारे संसार में अपने साम्राज्य को कायम करने की इच्छा रखने वाले आपके मार्ग में सबसे अधिक बाधक थे। इसीलिये बड़े पैमाने पर आप अपने मिशन का प्रचार नहीं कर सके। सब धर्मों के उत्सव मनाने और सब में समान रूप से भाग लेने के भी आप समर्थक हैं। आप स्वयं रमजान और कृष्णाष्टमी का उपवास रखते हैं। ईद की नमाज में शामिल होते हैं, दिवाली-होली और क्रिस्मस मनाते हैं। बौद्ध-मन्दिरों में जाते और सिख-गुरुओं के जन्म दिन मनाते हैं।

स्वार्थी नेता धर्म के नाम पर जो अत्याचार फैलाते हैं, उनसे आप बहुत दुःखी हैं। ईसाइयत और प्रजातन्त्र पर लिखते हुये आपने एक बार लिखा था कि "कुछ सच्चे और ईमानदार लोग सच्चाई के साथ ईसाइयत और प्रजातन्त्र की भावना को स्वीकार करते हैं। उनके लिये इस भावना के बिना जीवन का कुछ भी मूल्य नहीं है। किन्तु परिस्थिति का विश्लेषण करने पर हम दुःख के साथ इस परिणाम पर पहुचते हैं कि समाज में सच्ची ईसाइयत का बहुत ही थोड़ा अंश बाकी रह गया है और प्रजातन्त्र का दुरुपयोग दूसरों पर अपना पूर्ण अधिकार रखने के लिये किया जाता है।" आपने यह

भी लिखा था कि पश्चिम के लोगों ने ईसाइयत का जो दुरुपयोग किया है, उससे पूर्व के लोगों में उसके लिये सन्देह पैदा होगया है। वस्तुतः सब धर्मों के तत्व और कृष्ण, बुद्ध, ईसा और मुहम्मद आदि सबके उपदेशों का सार एक ही है कि मानव की सेवा करो। वे सब मानव जाति का कल्याण चाहते हैं। किन्तु आज तो उन सबके नाम का और उपदेश का दुरुपयोग निजी स्वार्थों के लिये किया जाता है। निःसन्देह कुछ सच्चे लोग भी अवश्य हैं।

अपनी योजना और मिशन में दृढ़ विश्वास रखते हुये राजा जी ने कभी लिखा था कि "नया प्रभात प्रगट हो रहा है। सब धर्मों की एकता में सारे मानव समाज की नैतिकता इकट्ठी होकर शैतान के साथ युद्ध छेड़ेगी, उसको पराजित करेगी और उसके हाथ पैर बांधकर उसको नष्ट कर देगी। सारी पृथ्वी पर धर्म का राज्य हो जायगा। विश्वास रखो। विश्वास के साथ काम करो। प्रभु सबका भला चाहते हैं।"

: १६ :

राजाजी और गांधीजी

"अल्लाह की मेहरबानी है कि हमारे देश ने गुलामी के इन दिनों में महात्मा गांधी को जन्म दिया है।" ये शब्द राजाजी ने एक लेख में लिखे थे। महात्माजी में आपकी दृष्टि में गांधी, लेनिन, और सन यात सेन का समन्वय है और आप संसार के सबसे बड़े आदमी हैं। उनको आप "किंग-मेकर" कहा करते हैं। मतलब यह है कि यदि किसी को भी कांग्रेस का प्रधान या राष्ट्रपति बनाना हो, तो उसको उनका आशीर्वाद अवश्य प्राप्त करना चाहिये।

एक बार एक मित्र ने आपको लिखा था कि आप सरीखा सहृदय व्यक्ति कांग्रेस का प्रधान बन सके, तो बहुत अच्छा हो। राजाजी ने उसको लिखा था "आपका और आपके मित्रों का लिखना ठीक हो सकता है, किन्तु हाई कमाण्ड और 'किंगमेकर' महात्मा गांधी का विचार क्या है? वे यदि मेरी सेवायें इस योग्य समझते हों, तो वे सरकार पर जोर डालकर मुझे स्वदेश लौटने की अनुमति दिलायें और कांग्रेस में सम्मिलित होने का अवसर दें।

राजाजी का यह भी स्पष्ट मत है कि गांधी जी ने अहिंसा और सत्याग्रह के रूप में देश में ऐसी शक्ति पैदा की है कि उसका सामना अंग्रेजी साम्राज्य के लिये कर सकना संभव नहीं है। आप यह भी मानते हैं कि अन्त में संसार को अहिंसा को बतौर धर्म के अपनाना होगा और उसके बिना संसार में स्थायी शांति कायम न हो सकेगी। लेकिन प्रश्न यह है कि राजाजी ने स्वयं अहिंसा को कहां तक अपनाया है, विदेशों में रहते हुये आपने स्वदेश की आजादी के लिये विदेशों की हिंसात्मक सहायता प्राप्त करने का निरन्तर यत्न किया है। बाहरी परिस्थितियां कुछ भी क्यों न हों, किन्तु इसमें सन्देह नहीं है कि राजाजी ने अनेक बार अपने को गांधीजी के साथ सर्वथा सहमत

बताया है और उनकी अहिंसा में दृढ़ विश्वास प्रगट किया है। एक बार एक आदमी ने आपको लिखा था कि "इंग्लैण्ड के युद्ध में हारने पर यदि जर्मनी या किसी अन्य देश ने हमारे देश पर हमला कर दिया, तो उसका सामना कैसे किया जायगा ? मैंने महात्मा गांधी और अन्य नेताओं से यह प्रश्न पूछा है, किन्तु किसी ने भी मेरा समाधान नहीं किया। अहिंसा में मेरा विश्वास नहीं है। मैं सोचा करता हूँ कि यदि हिन्दुस्तान पर किसी साम्राज्यवादी राष्ट्र ने हमला कर दिया तो गांधीजी अपनी अहिंसा से उसका सामना कैसे करेंगे ? आशा है आप कोई रास्ता बतायेंगे ?" राजाजी ने उसको लिखा था कि "मेरा यह विश्वास है कि गांधीजी ने हिन्दुस्तान में एक चमत्कार कर दिखाया है। अंग्रेजों को परास्त करने और देश की आजादी प्राप्त करने के लिये अहिंसा सबसे बढ़िया हथियार है। इसी से देश को बड़े पैमाने पर संगठित किया जा सकता है। आजादी के लिये देश का नेतृत्व कांग्रेस कर रही है। मेरी सम्मति यही है कि विश्व-सघ की भावना से आप कांग्रेस में रहकर देश की सेवा करें।"

१९४० में मास्को के एक पत्र ने गांधीजी पर छींटे कसते हुये उनको अंग्रेजों का एजेण्ट तक लिख दिया। राजाजी इसको सहन न कर सके। आपने उसके उत्तर में लिखा, कि 'मास्को के पत्र ने गांधीजी पर छींटाकशी क्यों की ? क्यों उनको अंग्रेजों का एजेण्ट लिखा ? इसका कारण यही है कि गांधीजी ने मास्को के सुर में सुर मिलना ठीक नहीं समझा और इंग्लैंड का साथ नहीं छोड़ा।" आपने यह भी लिखा कि "मास्को हिन्दुस्तान की परिस्थिति से सर्वथा अपरिचित है और उसको हिन्दुस्तान की आजादी के आंदोलन का तरीका पसंद नहीं है। इसका संचालन मास्को के इशारे पर न किया जाकर गांधीजी अपने तरीके से कर रहे है।" राजाजी यह कभी भी नहीं मानते थे कि गांधीजी इंग्लैंड की इच्छा पर चलेंगे। फिर राजाजी ने इसी बारे में लिखा कि "क्या मैं कम्युनिस्ट लोगों से पूछ सकता हूं कि कामरेड लेनिन ने १९२०-२१ में इंग्लैंड की सहायता क्यों चाही थी ? क्यों उसने उसके साथ व्यापारिक सन्धि की थी ?" मास्को की यह गति-विधि राजाजी को बिलकुल भी पसन्द न थी।

गांधी जी को एक पत्र

महात्मा गांधी के साथ राजा जी निरन्तर पत्र-व्यवहार भी करते रहे थे। इन पत्रों में संसार की गति-विधि पर विचार प्रगट किये जाते थे। युद्ध के दिनों में भी कई पत्र लिखे थे। उनमें से आपको उत्तर किसी का भी नहीं मिला था। सैंसरशिप के कारण सीधे लिखे गये पत्रों का मिलना संभव न जानकर राजा जी ने, 'विश्व-संघ पत्रिका' में खुले तौर पर पत्र लिखने शुरू किये थे। २५ अगस्त १९४१ को पत्रिका में लिखे गये एक लम्बे पत्र का आशय हम यहां बतौर नमूने के दे रहे हैं। वैसे भी यह पत्र बहुत महत्वपूर्ण है, इसमें आपने लिखा था कि "कोई एक वर्ष हो गया, जब आपका पत्र मुझे मिला था। मैंने कई पत्र लिखे। उत्तर किसी का भी न मिला। सम्भव है युद्ध की सैंसरशिप के कारण आपको भी मेरे पत्र न मिले हों। पूरा एक महीना हुआ मैंने आपको एक पत्र लिखा था और वह इस पत्रिका में प्रकाशित हुआ था। मुझे नहीं पता कि सैंसर के हाथों से पार होकर आपको मेरा पत्र मिलता भी है कि नहीं? भले ही आपको न मिले, किन्तु दुनिया के लोग तो इसको देख ही लेंगे। आज और भी अधिक महत्व की समस्या मैं आपके सामने रखना चाहता हूँ। शत्रुओं के गुप्तचरों को भौंकने वाले कुत्ते मानकर हम उनकी उपेक्षा कर सकते हैं। वे यदि काटने की कोशिश करेंगे, तो मैं जानता हूँ कि आप तो अहिंसात्मक ही रहेंगे। मैं क्या करूंगा,—यह तो परिस्थिति पर निर्भर है। मैं ऐसे मौके पर अवसरवादी बनना अनुचित नहीं मानता। ऐसे मौके पर सामने वाले की और अपनी शक्ति का तो अन्दाज करना ही होगा। अब मैं मुद्दे की बात पर आना चाहता हूँ। मैं आपका कीमती समय छोटी-छोटी बातों में नष्ट नहीं करना चाहता। मैं उन नरम लोगों की मनोवृत्ति को समझ सकता हूँ, जो अंग्रेजी सरकार के साथ सहयोग करना चाहते हैं। वे यह कहते है कि पिछले युद्ध में जैसे इंग्लैण्ड जीता था, वैसे ही इस बार भी अमेरिका की सहायता से वह जीत जायगा। रूस के रुख से उनके इस विश्वास को और भी बल मिला है। पिछले युद्ध में इंग्लैण्ड का साथ देने वालों को जो

इनाम और खिताब मिले थे, उन पर उनकी लालची आंखें लगी हुई हैं। आपको भी उस समय रंगरूट भरती करने के लिये सोनेका मैडल मिला था, किन्तु आपने उसको लौटा दिया था। सब महात्मा तो नहीं हैं। स्वार्थ उन्हें अंधा बना देता है। मुझे यह देखकर बहुत प्रसन्नता हुई है कि आपने इस बार किसी भी प्रकार का सहयोग नहीं दिया और न आप "रेडक्रास" की ही कोई मदद कर रहे हैं। आपने इंग्लैण्ड के विरुद्ध युद्ध की घोषणा तो नहीं की है, किन्तु आपने युद्ध-उद्योगों में सहायता देने से इन्कार कर दिया है। आपकी यह स्थिति बहुत ही शानदार है। चाहे अंग्रेजों ने आपको जेल में नहीं बन्द किया है, किन्तु फिर भी लोगों को आपकी सचाई में सन्देह नहीं है। मैं चाहता हूँ कि आप आज की परिस्थिति से पूरा लाभ उठावें। यह संभव है कि जर्मन-सेनाएँ काकेशस को पार करके ईरान और दक्षिण अफगानिस्तान के रास्ते शीघ्र ही भारत पर हमला कर दें। जापान भी बर्मा पर कब्जा करने के बाद चुंगकिंग को लड़ाई का सामान जाना बंद कर सकता है। इन परिस्थितियों में केवल आप ही हिन्दुस्तान को युद्ध का क्षेत्र बनने से बचा सकते हैं।

"मैं आपको पहले भी कह चुका हूँ कि इस समय किसी अफगान को ईरान से लेकर आसाम तक के आर्य महाप्रदेश का नेता बना देना चाहिए और आपको उसका दीवान या चांसलर बन जाना चाहिए। आपको जल्दी ही ईरान, अफगानिस्तान और नैपाल की सरकारों के साथ सम्पर्क कायम करके उन राजाओं से भी सम्पर्क कायम करना चाहिए, जिनके पास काफी सेनायें हैं। इन सब सेनाओं को हिन्दुस्तानी सेनाओं के साथ मिलाकर बड़ी सेना बना देनी चाहिए। इस समय हमें एक समर्थ और ईमानदार कमांडर-इन-चीफ (सिपहसालार) की सबसे अधिक आवश्यकता है। यह आदमी फौजी होने के साथ-साथ ऊँचे विचार और सब धर्मों की एकता में विश्वास रखने वाला होना चाहिए। हमारी सफलता इसी बात पर निर्भर है कि हम अपनी फौजी तैयारी पूरी कर लें। तभी हम जापान और जर्मनी के साथ सम्मानास्पद संधि कर सकेंगे।

अव्यवस्था मच जाने से हमें कुछ भी लाभ न होगा । सुधार तो बाद में होते रहेंगे । पहला काम तो अंग्रेजों के हाथ से सत्ता अपने हाथों में लेना और सरकारी मैशीनरी को अस्त-व्यस्त होने से बचाना है ।"

इस पत्र में राजाजी ने कितने ही विषयों की एक साथ चर्चा कर दी है । साधारण दृष्टि से पढ़ने वाला यह कह सकता है कि इसमें राजाजी ने हवाई महल खड़े किये हैं । यह पत्र जापान की युद्ध-घोषणा से पूर्वीय एशिया में युद्ध की लपटें फैलने से कोई तीन या साढ़े तीन महीने पहले लिखा गया था और इसमें राजाजी ने उसकी ओर स्पष्ट संकेत किया था । इस पत्र के सम्बन्ध में यह भी कहा जा सकता है कि वर्षों से राजाजी हिन्दुस्तान की गति-विधि और परिस्थिति से परिचित न थे, इसलिये इसमें उन बातों का भी आपने उल्लेख कर दिया, जो यहां से बिलकुल भी मेल न खाती थीं । यह भी कहा जा सकता है कि चूंकि वे अब स्वयं अफगान नागरिक थे और उदार विचारों सब धर्मों की एकता के समर्थक थे, इसलिये सम्भवतः स्वयं नेतृत्व की बागडोर अपने हाथों में लेकर अपनी आर्यन कल्पना को आप मूर्त रूप देना चाहते थे । इस पत्र से कुछ भी परिणाम क्यों न निकाला जाय, किन्तु यह सन्देह से सर्वथा रहित है कि राजाजी अपने देश को स्वतन्त्र और सारे संसार को अत्यन्त सुखी देखने के लिये सदा ही आतुर और विकल रहते थे । उसके लिये कुछ-न-कुछ करने की धुन आपके हृदय में सदा ही समाई रहती थी ।

: १७ :

हिन्दुस्तान की आजादी और विश्व-संघ

विश्व-संघ और सब धर्मों की एकता राजाजी के जीवन का मिशन था। उसकी पूर्ति के लिये हिन्दुस्तान और एशिया की आजादी को आप अनिवार्य मानते थे। साम्राज्यवाद और औपनिवेशिक प्रथा को आप आजादी के लिये खत्म करना आवश्यक समझते थे। राजाजी ने एक बार कहा था कि इंग्लैण्ड का साम्राज्यवाद और फ्रांस की औपनिवेशिक पद्धति ने संसार को इस बुरी तरह जकड़ा हुआ है कि उनके रहते किसी भी देश की स्थानीय आजादी और विश्व की एकता का कायम होना असम्भव ही है। उन्होंने तलवार और कूट नीति के सहारे संस्था में अपनी प्रभुता कायम की है और भविष्य में भी उसको बनाये रखना चाहते हैं। वहां की जनता को शासकों ने उल्लू बना रखा है। वर्तमान अन्याय और असमानता को वे अपनी सुनहरी बातों से ढके रखना चाहते हैं। इसी अन्याय और असमानता को नष्ट करने और हिन्दुस्तान में से ब्रिटिश साम्राज्य को जड़ मूल से उखाड़ फेंकने का उपाय ढूंढने के लिये आप सारे संसार में भटकते फिरे। ब्रिटिश साम्राज्यवाद मे जकड़े हुये सब देशों मे आपने सहयोग स्थापित करने का यत्न किया। उनसे सहानुभूति रखने वाले देशों से सम्पर्क कायम किया। कभी तो आपको अपनी आंखों के सामने आशा की किरण चमकती दीख पडती और कभी घोर निराशा की घनी छाया दीख पडती।

स्वदेश में चलने वाले आजादी के आन्दोलन के लिये बाहर की सहानुभूति और सहायता प्राप्त करने के लिए आपने तीस वर्ष विदेशों में बिता दिये। इसका यह मतलब नहीं है कि आप केवल विदेशी सहायता से ही स्वदेश को आजाद करना चाहते थे। ऐसा विचार कभी भी

आपके मन में पैदा नहीं हुआ। देश में व्यापक संघर्ष हुये बिना बाहरी सहायता आप निरर्थक मानते थे। आप यह भी जानते और मानते थे कि देश में ऐसा संघर्ष करने वाली संस्था केवल कांग्रेस है। इसी लिये वे जब तब कांग्रेस की चर्चा करने में नहीं चूकते थे। आपका यह दावा बिलकुल ठीक है कि आप सदा ही कांग्रेस के चार आना सदस्य रहे हैं। सितम्बर १९३१ में आपने लिखा था कि "यदि मुझे हिन्दुस्तान में जाना मिल जाय, तो मैं कोई नया संघर्ष खड़ा न करके कांग्रेस के साथ ही काम करूँगा।"

एक बार आपने कांग्रेस के भीतर एक 'आर्य-संघ' बनाने की भी अपील की थी। इसका उद्देश्य काँग्रेस को शक्तिशाली बनाना था। इसी विचार से आपने नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस के नेतृत्व में हुई आजाद हिन्द की क्रान्ति का समर्थन करते हुए कहा था कि "निस्संदेह, श्री सुभाषचन्द्र बोस द्वारा संगठित किये गये विद्रोह से हमारे आन्दोलन को अप्रत्यक्ष सहायता मिलेगी। सब प्रकार के आंधी और तूफान के झोंके झेलने के लिये हमारी कांग्रेस काफी मज़बूत है। कई बार शान्त हवा पैदा करने के लिये आंधी और तूफान भी आवश्यक हो जाते है।"

कांग्रेस में 'आर्य-संघ' के नाम से विशेष दल बनाने की आपकी अपील की जब समाचार-पत्रों में चर्चा हुई, तब आपने निम्न आशय का वक्तव्य प्रकाशित किया कि "मेरे मित्रों की यह धारणा बिलकुल ठीक है कि यदि मैं स्वदेश लौट सकूं, तो मैं कानून की सीमा के भीतर रहकर ही काम करूंगा। यदि मुझे बाहर रहने के लिये लाचार किया गया, तो मैं ब्रिटिश साम्राज्य की दीवारों को जमीन पर गिराने की कोशिश के लिये युद्ध तक करूंगा और अपनी जन्मभूमि में झण्डा फहराता हुआ तथा बिगुल बजाता हुआ प्रवेश करूंगा। हम सब यह जानते हैं कि युद्ध एक बड़ा जुआ है और उसमें कुछ भी होना संभव है। इस लिये मेरे मित्र यह चाहते हैं कि मैं शान्ति से स्वदेश लौट आऊँ और शान्ति से वहां आकर काम करूं।" इन पंक्तियों से साफ है कि राजाजी स्वदेश लौटने को आतुर थे, किन्तु सिर नीचा करके लौटना आपको पसन्द न था।

सितम्बर १९३९ में दूसरा महायुद्ध शुरू होते ही राजाजी ने फिर उन्हीं प्रयत्नों में लगने की कोशिश की, जिनमें आप १९१४—१८ के दिनों के महायुद्ध में लगे हुये थे। जर्मनी और रूस के साथ सम्पर्क कायम करने का आपने यत्न किया। आप जानते थे कि वैसा करना कांग्रेस के मार्ग के विरुद्ध है; किन्तु बदली हुई परिस्थितियों के अनुसार काम करना आप अनुचित नहीं मानते थे। जर्मनी, जापान और इटली की निन्दा करने वाले कांग्रेसियों के साथ भी आप सहमत न थे। आपका कहना था कि "इससे हिन्दुस्तान के इन मित्रों की सहानुभूति से हम हाथ धो बैठेंगे। हमारा काम तो वर्तमान स्थिति से यथासम्भव अधिक-से-अधिक लाभ उठाना है।

"बुद्ध की इस भूमि में बैठे हुये मैं वर्तमान महायुद्ध के छिड़ जाने पर यह साफ घोषणा करना चाहता हूं कि यह सुवर्ण अवसर है, जब कि हमे अपने देश को पूरी तरह आजाद करने का यत्न करना चाहिए। मेरा मतलब यह नहीं है कि हर अंग्रेज स्त्री-पुरुष की हत्या कर डालनी चाहिए, ऐसे जंगलीपन मे सफलता नहीं मिल सकती। मैं यह भी नहीं कहता कि कांग्रेस को तुरन्त आजादी की घोषणा करके प्रान्तीय गवर्नरों को हटा देना चाहिये। मेरा इतना ही कहना है कि विद्रोह का खुला प्रचार किया जाना चाहिये। यदि इसको दबाया जाय, तो उस दमन का सामूहिक विरोध किया जाना चाहिये। इस प्रकार पैदा की गई सामूहिक और व्यापक जागृति से स्वराज्य प्राप्त किया जा सकेगा। लेकिन मेरी धारणा तो यह है कि विद्रोह की भावना के सामने अंग्रेज माथा झुका देगे। महात्मा गांधी के कहने के अनुसार इस "रक्तहीन शक्ति" से हम इस समय पूरी आजादी प्राप्त कर सकते है। यदि आजादी प्राप्त करने में देरी लगे और युद्ध लम्बा खिच जाय, तो भारत में अंग्रेजी राज को नष्ट करने के लिये बाहर से कोशिश करनी ही होगी। इस दिशा मे यह अन्तिम प्रयत्न होगा और तब हमें आक्रान्ता के साथ किसी प्रकार की सुलह करनी होगी।" रूस और जर्मनी की परस्पर हुई सन्धि की चर्चा करते हुए आपने कहा कि "किसी भी बात को पत्थर की लकीर मान कर नहीं बैठ जाना चाहिये। आपस के सारे मतभेद दूर करके आजादी के

लिये संयुक्त मांग पेश करनी चाहिये और उसके लिये कंधे-से-कंधा मिलाकर एक साथ आगे बढ़ना चाहिये। व्यक्तिगत रूप से हमें बड़े-से-बड़ा त्याग करने को तय्यार रहना चाहिये, जिससे कांग्रेस अंग्रेजों को हिंदुस्तान छोड़ने के लिये मजबूर कर सके।" आपने उन लोगों से भी देशवासियों को सावधान किया, जो हिन्दुस्तान के गीत गाते हुये भी अंग्रेजी राज को दूसरों की तुलना मे अच्छा बताते हैं।

इन उद्धरणों से यह स्पष्ट है कि देश में व्यापक अहिंसात्मक क्रांति में विश्वास रखते हुये भी बाहर से किसी देश की हिंसात्मक सहायता प्राप्त करने में आपको कुछ भी संकोच न था। आप उनकी सराहना करने में भी चूकते न थे, जो अंग्रेजों के दुश्मन थे और उनके साथ युद्ध करने में लगे हुये थे। अक्तूबर १९३९ में आपने फिर लिखा था कि "जिस समय मैं यह पंक्तियां लिख रहा हूं, हिज हाईनेस फकीर साहब इपी ने हिन्दुस्तान की उत्तरी-पश्चिमी सीमा में अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध शुरू कर दिया है। वे कई वर्षों से इस युद्ध में लगे हुये हैं। अंग्रेजों की हवाई जहाजों से की गई बम-वर्षा भी उनको दबा न सकी।" आपने आशा प्रकट की कि यूरोप में युद्ध के छिड़ जाने और रूस-जर्मनी को सुलह हो जाने से सम्भव है ईपी के फकीर को रूस और जर्मनी की सहायता मिल जाय। निस्सन्देह यह आशा बहुत अधिक थी और वह पूरी न हुई। शुद्ध हृदय से सारी दुनिया को देखने वाले राजाजी कूट नीति की चालों का अनुमान नहीं लगा सके।

इस सबसे यह सहज में समझ में आ जाता है कि राजाजी स्वदेश की आजादी के लिये किस प्रकार चिन्तित रहकर प्रयत्न करना चाहते थे। आप सरीखे और लोग भी विदेशों में थे, जो किसी विदेशी सहायता के प्राप्त करने के यत्न में थे। १९४० के मध्य मे अमेरिका की गदर-पार्टी के प्रधान ने आपको लिखा था कि "हम सबका लक्ष्य एक ही है, तो मिलकर क्यों न काम करें? सब ओर से उसके लिये प्रयत्न होना चाहिये। हमारे लोग सब जगह काम में लगे हुए हैं। यदि आप किसी प्रकार हिन्दुस्तान पहुंच सकें, तो हमारे आदमी आपका साथ देंगे।"

विदेशों में इस ध्येय से रहने वाले अधिकांश हिन्दुस्तानी आपक

बड़ा मान करते थे और वे यह मानते थे कि आपके नेतृत्व में इस ध्येय को पूरा किया जा सकता है। इसी समय राजाजी ने स्वदेश की आजादी के लिये दुतरफा लड़ाई लड़ने का विचार उपस्थित किया। आपका कहना था कि देश में कांग्रेस को यह लड़ाई गांधीजी के नेतृत्व में अपने ढंग से जारी रखनी चाहिये और बाहर रहने वाले हिन्दुस्तानियों को जर्मनी, जापान तथा इटली के साथ मिलकर अपने को संगठित करके देश के भीतर होने वाली लड़ाई को बाहर से सहायता पहुंचानी चाहिये। इसके लिये आपने जर्मनी और जापान से भी अपील की और हिन्दुस्तान पर अफगानिस्तान से हमला करने वाली सेना खड़ी करने का उनसे अनुरोध किया। आपने इसी निमित्त से जर्मनी, इटली, ईरान और अफगानिस्तान जाने का भी प्रयत्न किया। इसके लिये सब प्रकार की कोशिश करके भी आप सफल न हुए। लेकिन निराश होना तो आपने सीखा ही न था। आशा से आपका हृदय सदा ही भरा रहता था। इसीलिये आशा से प्रेरित होकर आप निरन्तर अपने प्रयत्न मे लगे रहे। कई आशापूर्ण भविष्यवाणियां भी आपने की। १६४१ के अंत मे यह जानकर आपको बहुत दु:ख हुआ कि अंग्रेजों ने ईरान तथा अफगानिस्तान को भी अपने साथ मिला लिया है और हिन्दुस्तान विदेशी सत्ता के विरुद्ध विद्रोह करन में सफल नही हो सका है। उस समय की अपनी वेदना को प्रगट करते हुये आपने लिखा था कि "हिन्दुस्तान में कुछ भी चेतना, जागृति या क्रान्ति पैदा नहीं हुई। पैदा हो भी नहीं सकती। हिन्दू हमेशा मुसलमानों को यह कहकर कोसते रहते है कि उनमें देशभक्ति बहुत कम है। किन्तु उन्होंने भी अंग्रेज़ों की सहायता करने में कुछ भी उठा नहीं रखा। हिन्दू महासभा खुले तौर पर विदेशी सत्ता की सहायता और समर्थन कर रही है। मुस्लिम लीग, शब्दों मे भले ही न सही, किन्तु आचरण से काफिरों के राज की सहायता कर रही है। पंजाब में लीग का जोर है और पंजाब से ही अंग्रेज सेना के लिये सबसे अधिक भरती हुई है। निस्संदेह, कांग्रेस उसका विरोध कर रही है। उसके हजारों सदस्य जेलों में गये हैं। जेल जाने का रास्ता बिलकुल सीधा है। गान्धीजी इसके लिये लोगों का चुनाव करते हैं। वे उन द्वारा

नियत किये गये स्थान पर जाकर उनकी भाषा में युद्ध का विरोध करते हैं। यह भारत-क़ानून के विरुद्ध माना जाता है और ऐसा करने वाले गिरफ्तार करके जेल भेज दिये जाते हैं। सरकार इसको एक नाटक और तमाशा ही समझती है। इस स्वर्णीय अवसर पर भी हिन्दुस्तानी अपनी जंजीरों को तोड़ फेंकने के लिये सचेत नहीं हुये हैं।"

इसी समय आपने हिन्दुस्तान में और बाहर रहने वाले हिन्दुस्तानियों के नाम एक अपील प्रकाशित की थी। उसमें आपने कहा था कि "विदेशी सत्ता की कठोर पराधीनता में जो कुछ हम कर सकते थे, वह हमने कांग्रेस के रूप में किया है। यदि देश के समस्त लोगों ने कांग्रेस का साथ दिया होता, तो निश्चय ही हम आज तक आजादी प्राप्त कर चुके होते। अपने देशवासियों से मैं यही कहना चाहता हूं कि कांग्रेस का साथ दो। देश से बाहर रहने वालों से मैं यह अपील करना चाहता हूं कि हमें अपने देश को गुलामी में जकड़ने वाली जंजीरों को तोड़ने के लिये कुछ-न-कुछ जरूर करना ही चाहिये। इसी अपील में आपने देश के किसी सीमा-प्रदेश पर हिन्दुस्तानी या आर्यन सेना का संगठन करने और उस नये हिन्दुस्तान को जन्म देने के लिये नई आशा तथा दृढ़ निश्चय से हिन्दुस्तान में प्रवेश करने पर जोर दिया था, जिसमें आर्थिक, राजनीतिक और धार्मिक स्वतन्त्रता सबको समान रूप से प्राप्त होगी।

राजाजी के स्वप्न पूरे न हुये। आप अपनी योजनाओं को मूर्त रूप न दे सके। देश की आजादी के लिये आप सेना खड़ी न कर सके। लेकिन, आपकी भावना, कल्पना और योजना को नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस ने कार्यरूप में परिणत किया। नेताजी भी इस अवसर की खोज में वर्षों से लगे हुये थे। अपनी योजना को पूरा करने में वे सफल हुये। पूर्वीय एशिया में रहने वाले हिन्दुस्तानियों में आजाद हिंद की भावना पैदा करके उन्होंने चमत्कार कर दिखाया। आजाद हिन्द सरकार की अधीनता में आजाद हिन्द फौज खड़ी करके उन्होंने अराकान और इम्फाल के मोर्चों पर हमला तक कर दिया। राजाजी की भावना, कल्पना और योजना इस रूप में भी पूरा होने से यह प्रगट है कि आप केवल हवाई किले खड़े

करने में नहीं लगे हुये थे। अन्तर इतना ही है कि नेताजी को जो परिस्थितियां और साधन-सामग्री मिल गईं, वे राजाजी के हाथ न लगीं।

स्वदेश की आजादी के लिये राजाजी की तड़पन और उसके लिये कुछ-न-कुछ करने की आपकी साध सन्देह एवं विवाद से सर्वथा रहित है। आपका देशप्रेम स्फटिक मणि के समान नितान्त निर्मल, आपकी देश-भक्ति गंगा की धारा की तरह अत्यन्त पवित्र और कांग्रेस के प्रति आपकी एकान्त निष्ठा हिमाचल की भांति सर्वथा अचल है।

: १८ :

राजाजी और महायुद्ध

राजाजी के जीवन की एकान्त साधना का चरम लक्ष्य सब धर्मों की एकता और विश्व-संघ की स्थापना रहा है। संसार में शान्ति, सन्तोष, सुख और स्वतन्त्रता का साम्राज्य कायम करने के लिये आप प्रयत्नशील रहे हैं। फिर भी आपको हम युद्ध की उपासना में लगे हुये लोगों से मिलते-जुलते, उनसे दोस्ती गांठते, युद्ध-क्षेत्र के चक्कर काटते और हिन्दुस्तान पर हमला तक करने की तय्यारी करते, उसके लियें योजना बनाते अथवा अपील करते हुये देखते हैं। इसलिये युद्धों के बारे में आपकी विचार-धारा का जानना आवश्यक है।

१९१४–१८ में जर्मनी से अफगानिस्तान, अफगानिस्तान से फिर जर्मनी तथा रूस आदि में घूमते हुये आपकी जो मनोदशा हुई होगी, उसकी कल्पना करना कठिन नहीं है। उस समय आपके हृदय में निश्चय ही वही वेदना पैदा हुई होगी, जो कि युवावस्था में पैदा हुई थी और जिसके कारण आपका ध्यान समस्त मानव-समाज की ओर समान रूप से आकर्षित हुआ था। इसी से आपके हृदय में प्रेम महाविद्यालय की कल्पना पैदा हुई थी। इसी से आपके हृदय में सब धर्मों की एकता एवं विश्व-संघ की स्थापना का विचार पैदा होकर संसार को युद्धों से मुक्त करके शान्ति, सन्तोष तथा सुख का राज्य कायम करने का संकल्प उत्पन्न हुआ था। दूसरे महायुद्ध से पैदा हुई परिस्थिति पर विचार करते हुये आपके हृदय में एक बार फिर उसी वेदना की अनुभूति का पैदा होना स्वाभाविक था। यह वेदना युद्ध के दिनों में लिखे गये लेखों में भी साफ-साफ़ झलकती है। अगस्त १९३९ में जब रूस-जर्मनी में समझौता होने का समाचार आपने सुना तब, आपने कहा कि "यह इतना महत्वपूर्ण समाचार है कि इस पर हमें तुरन्त ध्यान देना चाहिये।

कई वर्षों के बाद अब मैं पहली बार एशियाई राष्ट्रों की आजादी का स्पष्ट स्वप्न देख रहा हूं।"

यूरोप की लड़ाई के विस्फोट होने का समाचार सुनकर आपको बहुत धक्का लगा और प्रसन्नता भी हुई। धक्का तो इस लिये लगा कि संसार को एक बार फिर खून में स्नान करना पड़ेगा और प्रसन्नता इस लिये हुई कि हिन्दुस्तान तथा अन्य पराधीन देशों को स्वतन्त्र होने का एक सुवर्ण अवसर हाथ आ गया। आपने तब लिखा था कि "पहला महायुद्ध समाप्त होते ही बीस वर्ष पहिले वर्सेलीज की सन्धि के रूप में घृणा का जो बीज बोया गया था, वह भीतर-ही-भीतर जहर पैदा करता रहा।" मंचूरिया में चीन-जापान में शुरू हुये युद्ध के सूत्रपात तक की समस्त घटनाओं का आपने विस्तार के साथ विवेचन किया। आपने लिखा कि निजी स्वार्थों, अपने आधीन प्रदेशों की सीमा को फैलाने की आसुरी लालसा और एक दूसरे के प्रति सन्देहास्पद मनोवृत्ति के कारण साम्राज्यवादी राष्ट्रों ने मनुष्य समाज के लिये यह भीषण अनर्थ पैदा किया है। मैं यह नहीं मानता कि सितम्बर १९३९ में किसी नये महायुद्ध का श्रीगणेश हुआ है। यह तो पहले की ही शृङ्खला है।

इस रक्तपात, विनाश और प्रलय से मानव समाज की रक्षा करने का आपकी दृष्टि में 'विश्व-संघ' ही एकमात्र उपाय था। इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये इंग्लैण्ड के साम्राज्य को नष्ट करना आपकी दृष्टि में आवश्यक था और उसके लिये जर्मनी या किसी का भी साथ देने में आपको कुछ भी संकोच न था। इस पर भी आपकी दृष्टि अपने निश्चित ध्येय पर लगी हुई थी। युद्ध का सूत्रपात हो जाने पर भी आपने संसार के लोगों और शासकों के नाम अपील निकाल कर युद्ध बन्द करने और आपस में सन्धि करके शान्ति कायम करने पर जोर दिया। इंग्लैण्ड के लोगों से अपील करते हुये आपने कहा था कि "मुझे अंग्रेजों से द्वेष या घृणा नहीं है। अंग्रेज शासक अपनी जनता को भी धोखा दे रहे हैं। उन्होंने विशाल हिन्दुस्तान के करोड़ों लोगों को अपनी गुलामी में जकड़ा हुआ है। उनमें भी बादशाह एडवर्ड आठवें, मि० जार्ज लैंसबरी और दीनबन्धु एण्डरूज सरीखे सैंकड़ों-हजारों आदमी हैं, जिनको

इस युद्ध के परिणाम की कल्पना करके कुछ ऊंचा उठना चाहिये और अपनी सरकार का नया संगठन करके आजाद हिन्दुस्तान के साथ दोस्ती का सम्बन्ध कायम करना चाहिये"। युद्ध के दिनों में तो नहीं, किन्तु युद्ध के बाद इस अपील के रूप मे की गई आपकी यह भविष्यवाणी कितनी सत्य सिद्ध हुई ! मजूर दल ने उस समय की सरकार का तख्ता पलट दिया और इस नयी सरकार ने हिन्दुस्तान को आजाद कर उसके साथ दोस्ती करने का सूत्रपात कर दिया।

जर्मनी के साथ सन्धि करने के लिये भी आप प्रयत्नशील थे। आपको आशा थी कि जर्मनी अस्थायी आजाद हिन्द सरकार की स्थापना करने में आपकी सहायता करेगा। इसी लिये जब सितम्बर १९४० में जर्मनी, जापान और इटली में त्रिराष्ट्र-सन्धि हुई, तब आपने इस पर परम सन्तोष प्रकट किया। आपका यह विश्वास दृढ हो गया कि इंग्लैण्ड हारेगा और धुरी राष्ट्र विजयी होंगे। आपकी यह भी धारणा थी कि अमेरिका इस सन्धि से कुछ सबक सीखेगा और यूरोप की लड़ाई मे अलग रहेगा।

इस सन्धि से रूस के अलग रहने पर भी आपका विचार यह था कि स्टालिन और उसकी सरकार का रुख धुरी राष्ट्रों के प्रति बदलेगा नहीं। अपने देश की आजादी, एशिया (आर्यन प्रदेश) की स्वतन्त्रता और संसार की सुख-समृद्धि की ओर आपकी दृष्टि सदा ही लगी रहती थी। आप सब चीजों की परख इसी कसौटी पर किया करते थे।

किसी भी पादाक्रान्त राष्ट्र को जब आप आक्रान्त के विरुद्ध सिर उठाकर खड़ा होते देखते थे, तब आपका हृदय फूला न समाता था। १९४० में जब मिश्र ने मित्र राष्ट्रों के दबाने पर भी धुरी राष्ट्रों के विरुद्ध युद्ध करने से इनकार कर दिया, तब आप बहुत प्रसन्न हुए। तब आपने लिखा था कि "मुझे इस पर बहुत ही आश्चर्य और प्रसन्नता हुई। मुझे भय था कि कहीं मिश्र इटली के विरुद्ध युद्ध में कूद न पड़े ; किन्तु उसके तटस्थ रहने के निश्चय के लिए मैं उसको बधाई देता हूं। दूसरों

का पादाक्रान्त बना हुआ राष्ट्र इससे अधिक कर ही क्या सकता था? कांग्रेस ने हिन्दुस्तान में जिस साहस से काम लिया है, उसी का परिचय मिश्र ने दिया है। अपने मास्टर के हुक्म की अवज्ञा करना साधारण बात नहीं है।"

राजाजी चाहते तो यह थे कि मिश्र और अधिक साहस से काम ले और स्वतन्त्रता की घोषणा करके तुर्की तथा अरब के साथ मिलकर अंग्रेजों के विरुद्ध युद्ध की घोषणा करे। यह भी ऐसी आशा थी, जिसका पूरा होना संभव न था। लेकिन, राजाजी अपनी ही दृष्टि से सब घटनाओं पर विचार करते और निराशा के सर्वथा विपरीत आशा का स्वप्न देखा करते थे। आपकी विश्व संघ की कल्पना भी निराशा के विरुद्ध आशा की ही एक सुनहरी कल्पना थी और इस कल्पना को मूर्त रूप देने के लिये ही आप सब घटनाओं का विवेचन सर्वथा स्वतन्त्र दृष्टि से किया करते थे। भावी का निरूपण करने वाला अपने को वर्तमान से बांध कर नहीं रख सकता। राजाजी भी भावी या भविष्य का निरूपण करने वालों में से हीएक हैं।

१९४१ में सीरिया और ईराक पर जब अंग्रेजों ने हाथ डाला था, तब राजाजी ने बड़ी वेदना के साथ लिखा था कि "आखिर इन दो पुराने सभ्य देशों को भी दुर्भाग्य नें आ घेरा है। यह दुर्भाग्य उस बड़े दुर्भाग्य की सूचना है, जो दुनिया के उस भाग के सिर पर छा जाने वाला है। ईराक पर हाथ डालना ईरान की पीठ पर पिस्तौल तानने के समान है और सीरिया पर हाथ डालना तुर्की की पीठ में छुरा भोंकने के समान है। इस प्रकार सौदी अरब पर भी घेरा डाला जा रहा है। ईरान पर कब्जा हो जाने पर अफगानिस्तान का बचा रहना संभव नहीं है। यह सब देखते हुये भी हिन्दुस्तान में हमारे मुसलमान भाई छोटी-छोटी बातों में उलझ रहे हैं। दुर्भाग्य से हिन्दू यह समझे हुये हैं कि इन देशों की बदकिस्मती से उनका कोई सरोकार ही नहीं है। मैं उनको यह बताना चाहता हूं कि उनका जीवन पश्चिमीय

सीमावर्त्ती देशों के साथ बंधा हुआ है। एशिया के ईरान, अफगानिस्तान, अरब और तुर्की आदि के दुर्भाग्य की छाया से वे बच नहीं सकते। अंग्रेजों के प्रचार से जिनकी आंखें चुंधिया गई हैं अथवा जो बिलकुल ही मूर्ख हैं, वे इसको देख या समझ नहीं सकते। सब धर्मों की एकता और विश्व संघ के नाम पर मैं अपने देश के हिन्दुओं और मुसलमानों से यह बार-बार अनुरोध करना चाहता हूं कि वे पश्चिम के इन देशों की पश्चिमीय राष्ट्रों की आसुरी लालसा से रक्षा करने के लिये एक हो जांय। उनकी रक्षा में ही हमारी रक्षा है।" कितनी उदार, व्यापक और स्पष्ट दृष्टि से राजाजी संसार की घटनाओं के सम्बन्ध में विचार करते थे? उनकी दृष्टि सब धर्मों की एकता और विश्व संघ के रूप में सारे संसार की एकता पर लगी हुई थी। समता और स्वतन्त्रता ही इस एकता के आधार थे। जो कुछ राजाजी ने ऊपर कहा था, वह कितनी जल्दी सत्य सिद्ध हुआ। ईरान पर भी हमला किया गया और अफगानिस्तान भी अपनी आजादी सुरक्षित न रख सका। सबसे अधिक दुःख तो आपको इस बात से हुआ कि ईरान पर हमला करने में रूस भी इग्लैण्ड के साथ हो गया। तब राजाजी ने एक लेख 'क्या हम युद्ध रोक नहीं सकते" शीर्षक से लिखा था। इसमें आपने लिखा था कि "क्या यह संभव है? संभव तो दीखता है। अमेरिका भी युद्ध के कीचड़ में पूरी तरह धँस गया है। इस भीषण स्थिति से अपना बचाव कर सकना अब उसके लिये उतना आसान नहीं रहा। मेरे लिए वहाँ जाना इसलिए संभव नहीं है कि मेरे पास वहाँ जाने का 'पासपोर्ट' नहीं है। फिर भी नये संसार में नई सभ्यता को पालने पोसने वाले राष्ट्र का इस स्थिति में पड़ना मेरे लिए बहुत दुःख का विषय है। मैं उस देश की कई चीजों को बहुत पसंद करता हूँ, किंतु कुछ लोगों द्वारा पैदा की गई अनुदार जातीयता से मुझे नफ़रत है। कुछ लोग बड़े उदार और विशाल हृदय रखने वाले हैं। किसी भी राष्ट्र को मानव-समाज के लिए आभूषण बनाना ऐसे ही लोगों का

जापानियों के साथ मतभेद हो गया। राजाजी की इच्छा यह थी कि हिन्दुस्ताम में अंग्रेजी राज के विरुद्ध हमला करने वाली हिन्दुस्तानियों की अपनी सेना हो। जापानी अपनी सेना को इसका श्रेय देना चाहते थे। इसके अलावा कमेटी के संगठन को लेकर राजाजी का अपने साथियों से भी मतभेद हो गया। स्वर्गीय श्री रासबिहारी बोस को जापानियों की सचाई पर पूरा भरोसा था और वे युद्धजन्य परिस्थिति से जैसे भी हो, पूरा लाभ उठाना चाहते थे। इस मतभेद के कारण राजाजी कमेटी से अलग हो गये। बाद में आपने राजनीति से ही हाथ खींच लिया और इम्पीरियल होटल छोड़ कर वापिस अपने आश्रम कोकूबुँजी में चले गये।

जापानी सरकार से आपने जीवन-निर्वाह के लिये मासिक खर्च की मांग की। आपका कहना था कि जापानियों द्वारा पैदा की गई परिस्थिति के कारण हिन्दुस्तानियों के लिये आपकी आर्थिक सहायता करना सम्भव नहीं रहा, उनके ही कारण आपको राजनीति से अलग होना पड़ा है और आपकी हैसियत 'राजा' की है। इस लिये जापानी सरकार को आपके खर्च की जिम्मेवारी अपने ऊपर लेनी चाहिये। जापानी सरकार ने एक हजार येन मासिक देना मंजूर कर लिया और जनवरी १९४२ में आपको दो मास के दो हजार येन दे भी दिये गये। अगले मास में केवल पांच सौ येन दिये गये। आपने इसमें अपना अपमान अनुभव किया और एक हजार से कम लेने से इनकार कर दिया। जापानी सरकार भी अपनी जिद पर अड़ गई। प्रश्न हजार-पांच सौ का न था, किन्तु जिद और प्रतिष्ठा का था। आपकी गति-विधि को कोकूबुंजी के आश्रम में सीमित रख कर भी आपके साथ जापानियों का व्यवहार बहुत अच्छा रहा। युद्ध-काल में राजाजी अपने ही आश्रम में एक प्रकार से नजरबन्द से रहे।

जापान की पराजय के बाद अगस्त १९४५ में वहां अमेरिकन सेनाओं का कब्जा हो जाने पर मित्र-सेनाओं के प्रधान सेनापति जनरल डगलस मैकआर्थर ने जब गिरफ्तारियां शुरू कीं, तब आपको १५ सितम्बर १९४५ को पहिले ही हल्ले में बतौर "युद्ध बन्दी" के गिरफ्तार कर लिया

गया। यह सुनने में आया कि आप पर भी मुकदमा चलाया जायगा। आपको रिहा करने या स्वदेश आने के लिये अनुमति देने के सम्बन्ध में हिन्दुस्तान में काफी आन्दोलन हुआ। ९फरवरी १९४६ को आप रिहा किये गये।

मजूर सरकार से भी आपकी स्वदेश वापिसी के लिये अनुरोध किया गया। राजाजी ने स्वयं भी प्रधान मन्त्री श्री एटली को लिखा। आपको यह कह कर स्वदेश आने की अनुमति नही दी गई कि भारत मरकार आपको हिन्दुस्तान का नागरिक नहीं मानती। जब सर स्टफोर्ड क्रिप्स मन्त्रि-मिशन के साथ हिन्दुस्तान आये थे, तब आपने उनको भी लिखा। अगस्त १९४६ में आपको स्वदेश आने की अनुमति मिली और तुरन्त आप "एस० एस० सिटी आफ पेरिस" पर सवार होकर टोकियो से हिन्दुस्तान के लिये चल दिये। चलने से पहले आपने विश्वसंघ के केन्द्र और आश्रम के प्रबन्ध तथा देखरेख के लिये एक ट्रस्ट बोर्ड बना दिया।

आप १९४२ की क्रान्ति के ऐतिहासिक दिन ८ अगस्त को बत्तीस वर्षों के लम्बे अरसे के विदेश-वास या वनवास के बाद स्वदेश पहुंचे और मद्रास में अगस्त-क्रान्ति की याद मे मनाये गये समारोह में शामिल हुये। वहां से आप सीधे वर्धा आये। कांग्रेस की कार्यसमिति के निमित्त से वहां पधारे हुये नेताओं और महात्मा गान्धी से भी आप मिले। वहा से आप सीधे अपने जन्म-प्रदेश मथुरा आये। यहां कुछ दिन रह कर आप बम्बई गये। बम्बई से अकोला और नागपुर आदि होते हुये अलीगढ़ गये। वहां से दिल्ली, मेरठ और मुजफ्फरनगर आदि का आपने दौरा किया।

जहां भी कहीं आप गये, वहां आपका शानदार राजकीय स्वागत हुआ। अपने हृदय की चादर बिछाकर और अपनी पलकोंपर उठाकर लोग आपका स्वागत, सम्मान और अभिनन्दन करते है। देशवासियों की श्रद्धा तथा आदर प्राप्त करने का सौभाग्य अपने अनेक साथियो में मौलाना ओबिदुल्ला सिन्धी के बाद आपको ही प्राप्त हुआ है।

अपने भावी कार्यक्रम के सम्बन्ध में राजा साहबने अपने भाषणों

में काफी चर्चा की है। जापान में जब आपको स्वदेश लौटने की अनुमति मिली थी, तब आपने यहा आकर अपनाये जाने वाले कार्यक्रम की चर्चा एक पत्र मे की थी। उसमे आपने मुख्यतः इन बातों का उल्लेख किया था: —(१) सब नेताओं से मिलकर विचार-विनिमय करना, (२) देश का दौरा करके परिस्थिति का अध्ययन करना, (३) प्रेममहाविद्यालय को फिर से संगठित करके उसके आदर्श के अनुसार गांवों मे प्रेम-विद्यालयों की स्थापना करना, (४) हिन्दू-मुस्लिम एकता के लिये ठोस प्रयत्न करना। यहा आने के बाद आपने महात्मा गांधी, राष्ट्रपति नेहरूजी तथा अन्य नताओं से विचार-विनिमय करना और देश का दिनरात दौरा करके परिस्थिति का अध्ययन करना शुरू कर दिया है।

शिक्षा के क्षेत्र मे भी आप नये आदर्श की स्थापना करना चाहते है, जिससे विद्यार्थियो मे सस्था के प्रति गहरी ममता और अपनापन पैदा हो सके। विद्यार्थियो को आप सस्था की सारी सम्पत्ति, यहाँ तक कि मकान तथा अन्य सामान का भी हिस्सेदार बनाकर मालिक बनाना चाहते है। प्रेममहाविद्यालय मे यह परीक्षण शुरू किया जायगा। मजदूर को उद्योग-धन्धों की व्यवस्था मे तथा लाभ मे मालिक के साथ साझीदार बनाकर और इसी प्रकार किसान को जमीन की मालिकी तथा उत्पादन मे हिस्सा देकर, आपका कहना है कि मजदूर और किसान की समस्या को हल किया जा सकता है। अपने गावो से आप इस परीक्षण को शुरू करना चाहते है। सबसे अधिक विकट प्रतीत होने वाली साम्प्रदायिक समस्या है। अपने जीवन मे इसको हल करके देशवासियों के सामने आपने एक आदर्श उपस्थित कर दिया है। एक ओर शासन की बागडोर देश के नेताओं के हाथों मे दी जाकर राष्ट्रीयता का प्रभात प्रगट हो रहा है, तो दूसरी ओर साम्प्रदायिकता का विष इस प्रकार घोला जा रहा है कि अन्धकार की घटा उठती नजर आ रही है। ऐसे अवसर पर "क्रान्ति के महान पुजारी" का "विश्व-प्रेम के महान पुजारी" के रूप में स्वदेशवासियों के बीच आना अहोभाग्य ही है।

हमारे अन्य प्रकाशन

टोकियो से इम्फाल

पृष्ठ २२८ : दो दर्जन दुर्लभ चित्र : मूल्य २॥) : डाक से २॥।=)

महान् क्रांतिकारी नेता श्री सुभाषचन्द्र बोस की महान् क्रान्ति के सम्बन्ध में इस महान् क्रान्तिकारी पुस्तक सरीखी पुस्तक किसी भी भाषा में अभी तक प्रकाशित नहीं हुई है। बैंकौक (थाईलैण्ड) के दैनिक "आजाद हिन्द" के सम्पादक और थाईलैण्ड आजाद हिन्द संघ के प्रकाशन-अफसर सरदार रामसिंह जी रावल की इस अप्रकाशित पुस्तक को "जय-हिन्द" पुस्तक के यशस्वी लेखक श्री सत्यदेव विद्यालंकार ने हिन्दी में लिखा है। भूमिका लिखी है अगस्त-क्रान्ति की लक्ष्मीबाई श्रीमती अरुणा आसिफ अली ने।

आजाद-हिन्द की प्रचण्ड क्रान्ति के पूर्ण, प्रामाणिक और सिलसिलेवार इतिहास, बैंकौक से इम्फाल की ३००० मील की रोमांचकारी पैदल-यात्रा, जापान-युद्ध से पहिले और बाद में हिन्दुस्तानियों की पूर्वीय एशिया में स्थिति, आजाद-हिन्द संघ-सरकार तथा फौज के संगठन, अराकान तथा इम्फाल के मोर्चों की खूनी लड़ाइयों का पूरा हाल।

लाल किले में—मूल्य २॥), अनेक चित्र। १८५७ में और १९४५-४६ में लाल किले में चलाये गये ऐतिहासिक मुकद्दमों का पूरा हाल।

नेताजी जियाउद्दीन के रूप में—मौलवी, पठान और इटालियन के वेश में नेताजी श्री सुभाषचन्द्र बोस की कलकत्ता पेशावर तथा काबुल होकर बर्लिन पहुँचने की कहानी से भी अधिक रोचक, उपन्यास से भी अधिक दिलचस्प और आत्मकथा से भी अधिक सुन्दर कथा है।

राष्ट्रवादी दयानन्द—मूल्य १॥), पृष्ठ १५०। आर्यसमाज और स्वामी दयानन्द के सम्बन्ध में राष्ट्रीय दृष्टिकोण से लिखी गई क्रान्तिकारी पुस्तक।

मारवाड़ी पब्लिकेशन्स, ४०ए हनुमान रोड, नई दिल्ली (५)